भारतीय फासीवाद

फासीवाद विद्व के राजनैतिक पटल पर पिछली सदी के दूसरे दद्दाक के अंत में प्रकट हुआ था। इसने सबसे पहले 1922 में इटली की सत्ता प्राप्त की। 20 वीं सदी के चौथे दद्दाक में फासीवाद जर्मनी (1933) आस्ट्रिया (1933.34), हंगरी (1932), स्पेन (1939), पुर्तगाल (1933), बुलगारिया (1934) व पोलैंड (1935) आदि देद्दों में स्थापित हुआ। यूरोप के उन देद्दों में, जहां यह सत्ता हासिल नहीं कर सका तथा अमेरिका में भी फासीवादी प्रवृत्तियां/रूझान स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आये थे।

फासीवाद ने अपने शासन काल के दौरान मेहनतकद्दा जनता पर भयंकर कहर ढाये। फासीवादी उत्पीड़न के सबसे वीभत्स और बर्बर कारनामे, नाजियों और उसके नेता हिटलर द्वारा अंजाम दिये गये। फासीवादी शासन की स्मृतियां लोग अभी भी भूले नहीं है। हालांकि फासीवाद को द्वितीय विद्व युद्ध में गहरी शिकस्त मिली थी फिर भी अपनी इस पराजय के पूर्व फासीवाद दानव ने करोड़ों जिंदगियों की बलि ली थी।

इस पराजय के बावजूद पिछली सदी के सातवें दद्दाक से ही फासीवादी उभार पुनः यूरोप में दिखायी पड़ने लगा। '80 और '90 के दद्दाक में यह फासीवादी रूझान/प्रवृत्तियां काफी शक्तिद्दाली हुई हैं। फासीवादी प्रवृत्तियां/ रूझानों की सबसे अधिक मजबूती पहले की तरह पूंजीवादी व्यवस्था के केन्द्रक व उसके इर्द-गिर्द ही सबसे ज्यादा है। एद्दिाया, अफ्रीका और लातिन अमेरिका भी इन प्रवृत्तियों/ रूझानों से कम या ज्यादा रूप में ग्रसित हैं। भारत में भी यह रूझान खासा मजबूत है। फासीवादी प्रवृत्तियां/रूझानों के पुनः विद्व के राजनैतिक मंच पर प्रकट होना इस उक्ति की सत्यता को ही साबित करता है कि जब तक विश्व में साम्राज्यवाद व पूंजीवाद है तब तक फासीवाद का खतरा बना रहेगा। वर्तमान समय में फासीवाद का पुनः उभार, एक विद्वव्यापी रूझान है। यह वैद्विक रूझान/ प्रवृत्तियां मौजूदा वैद्विक परिस्थितियों–विद्व पूंजीवाद के बढ़ते संकट–का परिणाम है।

फासीवाद के इस विद्वव्यापी रूझान और खुद हमारे देद्दा में फासीवादी ताकतों की काफी बढ़ चुकी ताकत का मुकाबला करने के लिए यह आवद्दयक है कि अतीत के पन्नों को पलट लिया जाये और उसकी रोद्दानी मेंा वर्तमान परिस्थितियों का विद्लेषण किया जाये। इस परिघटना के ऐतिहासिक विद्लेषण के आधार पर ही हम अपने देद्दा में मौजूद फासीवादी प्रवृत्तियों, उन परिस्थितियों, फासीवाद के वर्ग चरित्र, उसके कारणों और उनसे लड़ने के लिए अपनायी जाने वाली रणनीति आदि के लिए सबक निकाल सकते हैं।

LSS

I

यूरोपीय फासीवाद के मूल तत्व

फासीवाद का कोई एक ही रंग–रूप नहीं होता। वह जिस भी देश में आता है, उस पर उस देश की विशिष्ट परिस्थितियों की छाप होती है। यूरोप के फासीवाद के लिए भी यही सच है। कुछ स्थानों पर यह राष्ट्रवाद का लबादा ओढ़ के आया तो कहीं फौजी शासन के भेष में और कही नस्लीय श्रेष्ठता के रूप में। फिर भी नस्लवाद आम तौर पर यूरोप के ज्यादातर देशों की समान विशेषता बनी।

फासीवादी आंदोलन का विकास पूंजीवादी व्यवस्था के संकटकाल में और सर्वहारा वर्ग द्वारा क्रांति कर दिये जाने के खतरे की स्थिति में हुआ था। फासीवाद का उद्देश्य था पूंजीवाद व्यवस्था को स्थायित्व देना और सर्वहारा क्रांति तथा समाजवाद को रोकना। इन्हीं दोनों उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ही फासीवादी दर्शन को गढ़ा गया था। क्योंकि मजदूरों के हिस्सों को अपनी ओर आकर्षित करने और मार्क्सवाद के वैज्ञिवक सिद्धान्त का मुकाबला करने के लिए फासीवादी सिद्धान्त को गढ़े जाने की नितांत आवश्यकता थी। फासीवाद के सिद्धान्त की आवश्यकता को इन्हीं वजहों से उसके नेताओं ने महसूस किया था। यही कारण है कि फासीवादी आंदोलन के उभार के दो वर्षो बाद आवश्यकता पड़ने पर फासीवादी दर्शन को गढ़ लिया गया। 1921 में मुसोलिनी ने लिखा

> *''इतालवी फासीवाद को अब, मौत या आत्मघात के खतरे के संदर्भ में, 'सिद्धान्त के एक ढांचे' की जरूरत है..... यह वाक्य शायद ज्यादा कठोर है लेकिन मेरी इच्छा है कि अभी और राष्ट्रीय अधिवेशन के बीच के दो महीनों के बीच फासीवाद के सिद्धान्त की रचना कर ली जाये।''*
>
> *(फासीवाद और सामाजिक क्रांति: रजनी पाम दत्त, पेज 198)*

इसी प्रकार हिटलर ने भी फासीवाद के लिए एक वैज्ञिवक सिद्धान्त गढ़ने की बात की थी ताकि मार्क्सवाद के वैज्ञिवक सिद्धान्त का मुकाबला किया जा सके। फासीवाद के दोनों प्रातिनिधिक नेताओं के बातों से ही यह स्पष्ट है कि फासीवाद का सिद्धान्त गढ़ लिया गया था। और उसे ही सिद्धान्त या दर्शन का नाम दिया गया था। इसमें मौलिकता या रचनाशीलता नाम की कोई चीज नहीं थी।

फासीवाद के सिद्धान्त में साम्राज्यवाद के युग के पूंजीवाद की सभी चारित्रिक विशेषताएं तीक्ष्ण रूप में मौजूद हैं। यदि विशिष्टितायें हैं तो बस इतनी ही, संसदीय जनवाद के प्रति बढ़ती उपेक्षा, युद्ध को मनुष्य का सर्वश्रेष्ठ काम बताना, शाक्तिशाली और सक्षम शासन की मांग, हिंसा का गौरवगान, मानवतावादी और उदारवादी विचारों का निष्कासन आदि। ये सभी रूझान आम तौर पर सभी साम्राज्यवादी व पूंजीवादी सरकारों में स्पष्ट रूप से देखे गये। फासीवाद ने इन सभी को क्रूरता के साथ प्रकट किया।

यह इससे भी प्रकट होता है कि फासीवाद में कुछ भी मौलिक नहीं है कि इसने उदारतावाद और उदार पूंजीवादी जनतंत्र की आलोचना मार्क्स से उधार ली हालांकि निष्कर्ष उलटा निकाला, एक

पार्टी का शासन लागू करने की बात रूसी क्रांति से ग्रहण की किंतु उसके क्रांतिकारी तत्व को निकाल फेंका, कारपोरेट राज्य का सिद्धान्त वर्तमान इजारेदार पूंजीपतियों से लिया और इसी प्रकार की अन्य बातें भी विभिन्न स्थानों से उठायी गयी और उन्हें अपने अनुकूल 'परिष्कृत' करके अपनाया गया । और फासीवाद के घोर प्रतिक्रियावादी चरित्र को छिपाने के लिए क्रांति का मुखौटा लगाया गया।

अब मोटा-मोटी फासीवाद के मूल तत्वों को इस प्रकार चिह्नित किया जा सकता है, ये मूल तत्व थेः राष्ट्रीय समाजवाद, निगमित राज्य, समरवाद, उग्रराष्ट्रवाद, सर्वसत्तत्मक राज्य और एक दलवाद, अमानवतावाद, लफ्फाजी, नस्लवाद, अभिजनवाद आदि।

जिन मतवादों और रचनाओं ने उपर्युक्त तत्वों की सराहना की थी, फासीवाद ने उन सभी को अपना आदर्श माना। इस बारे में जिन व्यक्तियों को उद्धृत किया जा सकता है, वे निम्न प्रकार हैं-नीत्से, सोरेल, गोबिनों, हर्डर, फादर जान, फिक्ते, विलियम द्वितीय (का सर्व जर्मनवाद) स्पेंगलर, वैग्नर आदि। फासीवाद के ऊपर गिनाये गये मूलतत्व कम या ज्यादा मात्रा में यूरोप के सभी फासीवादियों की चारित्रिक विशेषता रही हैं।

फासीवाद के उपर्युक्त मूलतत्वों में से कुछ को और स्पष्ट कर लिया जाये कि फासीवाद शब्दजाल के माध्यम से कैसे अपने घोर प्रतिक्रियावादी चरित्र को छुपाने का प्रयास करता है। और कैसे वह ऐसा करके पतनशील पूंजीवाद जिसे अब धरती से विदा हो जाना चाहिए, की सेवा करता है।

मजदूर वर्ग को भ्रमित करने के लिए फासीवादियों द्वारा निगमित राज्य (इटली) और राष्ट्रीय समाजवाद (जर्मनी) के नारे उछाले गये। फासीवादी नेता दावा करते थे कि फासीवादी राज्य न तो पूंजीवादी है और न ही समाजवादी है। फासीवाद को वे 'तीसरा विकल्प' कहते थे। इसी के मद्देनजर इटली और जर्मन में उपरिलिखित नारे दिये गये। इस कथित तीसरे विकल्प की सच्चाई क्या थी? सच्चाई यह थी कि फासीवादी एकाधिकारी समूहों के हितों की रक्षा के लिए मजदूरों का सब प्रकार से दमन करना चाहते थे, वे उन्हें अधिकार- विहीन बनाना चाहते थे। वे इसकी आड़ में हिंसा के द्वारा वर्ग अन्तरविरोध को दबाये रखना चाहते थे। निगमित राज्य और राष्ट्रीय समाजवाद संकटग्रस्त पूंजीवाद की स्थिति में भी ज्यादा से ज्यादा मुनाफा अर्जित करने के यंत्र थे।

फासीवादी नेताओं ने मेहनतकश जनता के विभिन्न हिस्सों को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए जमकर लफ्फाजी का सहारा लिया। उन्होंने तर्को से ऊपर आस्था को स्थापित किया। वे 'आदर्शवादी' और आध्यात्मिक भाषा का इस्तेमाल करते थे। लफ्फाजी के माध्यम से इन नेताओं ने आम जनता की भावनाओं, आकांक्षाओं और उनकी अज्ञानता के साथ खिलवाड़ किया और इस सबका एक ही उद्देश्य था किसी भी प्रकार से शासक वर्गो को लाभ पहुंचाना।

इतालवी फासीवाद ही नहीं बल्कि उन सभी फासीवादियों ने जिन्होंने अपना आधार खड़ा करने का प्रयास किया, इस लफ्फाजी की कला का उपयोग किया था और जर्मन के नात्सियों ने इसे चरम पर पहुंचाया था। फासीवाद के प्रातिनिधिक राज्य इटली और जर्मनी दोनों में ही आम लोगों को आकर्षित करने के लिए अनेक कभी न पूरे किये जाने वाले वायदे किये गये। यदि इटली में फासीवाद ने 'किसानों को जमीन', 'उद्योगों का नियंत्रण मजदूरों और तकनीशियनों के संघों को सौंपना', 'शेयर बाजार की समाप्ति' आदि बकवास की तो जर्मनी में भी 'मुनाफाखोरों और सूदखोरों

LS8

को मृत्युदंड', 'सूद के नाम पर गुलाम बनाने की व्यवस्था को तोड़ना', और 'बिना कमाई वाली आमदनी को समाप्त करना' आदि जैसे 'क्रांतिकारी' नारे पेश किये थे।

यूरोपीय फासीवाद ने इसके साथ ही युद्ध का महिमामंडन किया। फासीवाद न सिर्फ घरेलू मोर्चे पर प्रतिक्रियावादी होता है बल्कि बाहरी मोर्चे पर भी वह उतना ही प्रतिक्रियावादी चरित्र ग्रहण करता है। एक ओर वह सतत युद्ध का समर्थक है तो उपनिवेशों को गुलाम बनाये रखने का भी कट्टर समर्थक है। फासीवाद का यह चरित्र स्वयं फासीवादी कार्ली के शब्दों में स्पष्टतया के साथ प्रकट हुआ कि 'फासीवाद का जन्म युद्ध से हुआ था। और युद्ध के रूप में ही यह अपनी अभिव्यक्ति पाता है।' द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में इस कथन की सच्चाई ही साबित हुई ।

फासीवाद ने नारी प्रश्न पर भी घोर प्रतिक्रियावादी स्थिति ग्रहण की। फासीवाद ने महिलाओं को पुनः घर के अंदर वापस भेजने की वकालत की। फासीवाद महिलाओं की अल्प आर्थिक स्वतंत्रता को छीनकर उसे पुनः पुरुष पर निर्भर बना देता है। पूंजीवाद के विकास के युग में महिलाओं को जो थोड़ी बहुत स्वतंत्रता हासिल भी हुई थी, फासीवाद उसे भी छीन लेता है। फासीवादियों के आदर्शों में से एक स्पेंगलर कहता था,

> '' जर्मन नारियां योद्धा पैदा करें और उन्हें पैदा करने में सुख पायें। नारी ना तो साथी होगी, न प्रियतमा, वह केवल मां होगी''।

जाहिर है फासीवादियों ने महिलाओं को सिर्फ 'तोप के लिए अधिक चारा' पैदा करने की मशीन के रूप में देखा। यह है यूरोपीय फासीवाद और उसकी प्रतिक्रियावादिता।

LS8

यूरोपीय फासीवाद और उसका वर्ग चरित्र

अक्सर बुर्जुआ तानाशाही और फासीवाद को पयार्यवाची के रूप में इस्तेमाल कर दिया जाता है जब भी बुर्जुआ सरकारें दमन या उत्पीड़न करती हैं या नागरिक अधिकारों को सीमित करती हैं, उसे फासीवादी सरकार कह दिया जाता है। हर फौजी तानाशाही को भी आम तौर पर फासीवाद के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है। हमारे देश में भी कुछ लोग कह रहे हैं कि यहां फासीवाद है किंतु यह गलत है। साधारणतः हर दमन, हर अत्याचार, नागरिक अधिकारों को सीमित करने वाले प्रत्येक कदम, हर प्रतिक्रियावादी कदम या प्रतिक्रांति यहां तक कि संसदीय जनतंत्र को सीमित करना भी फासीवाद नहीं है। ये प्रवृत्तियां तो साम्राज्यवाद के युग में और विशेषकर आर्थिक संकट गहराने की स्थिति में आम तौर पर कम या ज्यादा रूप में सभी बुर्जुआ समाजों की चारित्रिक विशेषताएं है। क्योंकि दमन, उत्पीड़न, तानाशाही, प्रतिक्रांति, प्रतिक्रिया पहले भी थीं जब फासीवाद नहीं आया था। दमन उत्पीड़न, प्रतिक्रिया, फौजी तानाशाही और प्रतिक्रांति विशेष परिस्थितियों में फासीवाद बन जाती हैं।

स्वयं फासीवादी नेता फासीवाद को स्पष्ट करते हुए इसके वास्तविक चरित्र पर पर्दा डालते हैं। वे फासीवाद को कर्त्तव्य, राष्ट्र, राज्य, सत्त आदि के रूप में व्याख्यायित करते हैं। ये नेता अपने भाषणों में 'स्वार्थ से बढ़कर साझा हित' 'नागरिकता के उच्च नैतिक आदर्श', 'दूसरों के प्रति कर्त्तव्यों

पर जोर', 'सहयोग और कर्त्तव्य पर जोर', वीरता, साहस आदि बातों का जमकर इस्तेमाल करते हैं। किंतु ये बातें फासीवाद के चरित्र पर डाले गये आवरण मात्र हैं और इससे फासीवाद के चरित्र के बारे में कुछ भी स्पष्ट नहीं होता ।

यूरोप के उदारवादियों और सामाजिक-जनवादियों ने फासीवाद को 'मध्यवर्ग की क्रांति' के रूप में प्रचारित किया जो कि पूंजीपति और मजदूर वर्ग दोनों के खिलाफ है। इस धारणा का यह भी आधार था कि फासीवादी आंदोलन में मध्यवर्ग की ठीक-ठाक भागीदारी होती है। यह धारणा भी फासीवाद के वर्ग चरित्र को छुपाती है।

तब फिर यूरोप में फासीवाद क्या था और उसका वर्ग चरित्र क्या था? इस प्रश्न पर आने से पहले हम एक बार उन परिस्थितियों को देख लें जिनमें दमन, प्रतिक्रिया, फौजी तानाशाही, प्रतिक्रांति आदि फासीवाद बने । ये सभी प्रवृत्तियां तभी फासीवादी बनी जब पूंजीवादी सम्बन्धों में बिखराव आ रहा था, युद्ध के समय और बाद की आर्थिक दुरावस्था के कारण लोगों का पूंजीवाद और उसकी व्यवस्था से मोहभंग हो रहा था, मजदूर आंदोलन काफी शक्तिशाली होने के बावजूद पूंजीवाद का तख्ता पलटने में विभिन्न कारणों से असफल साबित हुआ किंतु फिर भी क्रांति का दबाव या डर मौजूद था, केवल ऐसी स्थिति में ही बुर्जुआ ने अपने शासन को सुदृढ़ करने के लिए फासीवाद को अपनाया। इन विशेष परिस्थितियों का विश्लेषण कामिंटर्न की छठी कांग्रेस (1928) के कार्यक्रम में किया गया:

> ''कुछ विशिष्ट ऐतिहासिक स्थितियों में बुर्जुआ, साम्राज्यवादी, प्रतिक्रियावादी आक्रामकता की प्रगति फासीवाद का रूप ले लेती है।
>
> ये स्थितियां है: पूंजीवादी संबंधों में अस्थिरता, काफी बड़ी संख्या में वर्गच्युत सामाजिक तत्वों की मौजूदगी, शहरी पेटी बुर्जुआ समूह और बौद्धिक वर्ग का दरिद्रीकरण; ग्रामीण पेटी बुर्जुआ वर्ग में असंतोष; और सर्वहारा वर्ग द्वारा क्रांति कर देने का दबाव या डर। अपने शासन को जारी रखने और स्थिर करने के लिए बुर्जुआ वर्ग संसदीय प्रणाली को छोड़कर फासीवादी व्यवस्था की तरफ बढ़ते जाने को मजबूर होता है, जो पार्टियों वाली व्यवस्था और जोड़-तोड़ से मुक्त होती है।''
>
> (फासीवाद और सामाजिक क्रांति : रजनी पामदत्त, पेज-107)

इसी प्रकार जब 1933 में फासीवादी हिटलर जर्मन की सत्त पर आरूढ़ होने में सफल रहा और फासीवाद अनेक देशों में ताकतवर बन रहा था तब कामिंटर्न के 13 वें प्लेनम ने फासीवाद के आने की स्थितियों का विश्लेषण किया गया था। वे इस प्रकार थी:

> ''1. क्रांतिकारी संकट और पूंजी के शासन के विरूद्ध व्यापक जनता का रोष बढ़ रहा है।
>
> 2. पूंजीपति वर्ग आम तौर पर संसदवाद और बुर्जुआ जनवाद के पुराने तौर-तरीकों से अपनी तानाशाही को लम्बे समय तक बरकरार रख पाने में समर्थ नहीं है।
>
> 3. और भी, आम तौर पर संसदवाद और बुर्जुआ जनवाद के तरीके, पूंजीपति वर्ग के लिए दोनों ही अपनी आंतरिक राजनीति (सर्वहारा के विरूद्ध संघर्ष) और विदेशी

LS8

राजनीति (दुनिया के साम्राज्यवादी पुनर्वितरण के लिए युद्ध) के लिए बाधक बन रहे हैं।'',

(The Communist International Documents, 1919-1943, Ed. Jane Degras, Volume- III, Page- 296, अनुवाद हमारा)

फासीवाद की परिभाषा, उसके कारणों व उसके वर्ग चरित्र को बहुत स्पष्टता के साथ कामिंटर्न के कार्यक्रम और कामिंटर्न में रखे गये प्रस्तावों में दर्ज किया गया है। कम्युनिस्ट इंटरनेशनल ने बिल्कुल शुरू से ही इस परिघटना पर नजर रखी और उसका विश्लेषण किया। इस विश्लेषण ने फासीवादियों, उदारवादियों तथा सामाजिक-जनवादियों द्वारा फासीवाद के असली उद्देश्यों और उसके वर्ग चरित्र पर पर्दा डालने की सभी बातों का भंडाफोड़ किया।

क्लारा जेटिकन ने 23 जून, 1923 में फासीवाद के संबंध में तीसरे ECCI प्लेनम में प्रस्ताव रखते हुए कहा कि ऐतिहासिक तौर पर यह (फासीवाद) रूस में आरंभ क्रांति को पूरा करने में असफलता के लिए सर्वहारा को मिला दंड था। यह बुर्जुआ राजसत्त के विघटन का लक्षण और पूंजीवादी समाज के टूटने का परिणाम था। फासीवाद के लिए भर्ती युद्ध से दरिद्र बना दिये गये और सर्वहारा बना दिये गये मध्यवर्ग से, पूर्व अधिकारियों से जो अब बेरोजगार हो चुके थे और सुधारवादी समाजवाद से निराश उन सभी तत्वों से जो वाम की ओर मुड़ने के बजाय समाजवाद में अपना विश्वास खो चुके थे, में से हुयी थी।

इसी प्रकार आगे भी, ''इसकी सबसे मजबूत जड़ यह तथ्य है कि साम्राज्यवादी युद्ध और पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के विघटन, जिसे युद्ध ने और अधिक तीखा व तेज किया, का अर्थ निम्न व मध्यम बुर्जुआ के अधिकांश हिस्सों, छोटे किसानों और 'बुद्धिजीवी समुदाय' के लोगों की पाली-पोसी आशाओं के विपरीत, उनकी पूर्व की जीवन परिस्थितियों, खासकर पूर्व की सुरक्षा का विघटन था। इन तबकों की सुधारवादी समाजवाद द्वारा लाये जाने वाले क्रांतिकारी सामाजिक सुधारों की धुंधली आशा भी निराशा के गर्त में जा चुकी है। सुधारवादी पार्टी व ट्रेड-यूनियन नेताओं का क्रांति के साथ विश्वासघात उन्हें स्वयं समाजवाद के प्रति निराशा की ओर ले गया। सोवियत रूस के बाहर सर्वहारा का भारी बहुमत जिस तरह से इस विश्वासघात को सहता है और पूंजीवादी चाबुक के अधीन अपने शोषण और गुलामी को पुख्ता करने के लिए खुद खटता है उससे अभिव्यक्त इच्छाशक्ति की कमजोरी और संघर्ष के प्रति भय ने इन छोटे और मध्यम (पेटी) बुर्जुआ तत्वों को और साथ ही बुद्धिजीवियों और क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन के एक सशक्त वाहक के रूप में सर्वहारा वर्ग में उनके विश्वास को हिलाया है। उनके साथ ऐसे बहुत से सर्वहारा तत्व शामिल हो गये हैं, जो कार्यवाहियों की मांग और तलाश में सभी राजनैतिक पार्टियों के व्यवहार से अंसतुष्ट थे। फासीवाद निराशा व वर्गच्युत, सभी सामाजिक तबकों के आधारविहीन, विशेषकर ऐसे पूर्व-अधिकरी जिन्होंने युद्ध के बाद अपनी जीवन-वृत्तियां खो दी हैं, को भी आकर्षित करता है। यह पराजित धुरी राष्ट्रों के लिए विशेष तौर पर सत्य है जहां परिणामस्वरूप फासीवाद ने गणतंत्र विरोधी चरित्र प्रदर्शित किया.....

LS8

''क्रांतिकारी उत्तेजना और सर्वहारा के उभार के समय फासीवाद ने एक हद तक सर्वहारा की क्रांतिकारी मांगों के साथ सहानुभूति प्रकट की या करने का नाटक किया। फासीवाद के पीछे चलने वाला जनसमूह महान व सार्वभौमिक वर्ग अंतर्विरोधों व वर्ग संघर्षों के, दो कैम्पों के बीच दोलायमान रहा । लेकिन पूंजीवादी शासन के सुदृढ़ीकरण और आम बुर्जुआ आक्रमण के साथ ही, उन्होंने स्वयं को निश्चित तौर पर बुर्जुआ के पक्ष में खड़ा कर लिया, जहां अनेक नेता पहले से ही मौजूद थे। बुर्जुआ ने फासीवाद को तुरंत ही सर्वहारा को हराने व गुलाम बनाने के लिए, अपनी लड़ाई में, खरीदकर सेवा में लगा लिया।... बुर्जुआ राजसत्त का पुराना, कथित गैर राजनीतिक तंत्र अब बुर्जुआ की उचित सुरक्षा की गारंटी नहीं कर सकता। उनके द्वारा सर्वहारा के विरूद्ध विशेष वर्ग संघर्ष दस्ते बनाने की शुरूआत हो चुकी है। फासीवाद इनके लिए रंगरूट उपलब्ध कराता है। हालांकि अपनी उत्पत्ति व अपने व्याख्याताओं के अनुसार फासीवाद में कुछ क्रांतिकारी प्रवृत्तियां भी शामिल होती हैं जो कि पूंजीवाद व उसके राज्य के विरूद्ध भी जा सकती है लेकिन फिर भी यह एक खतरनाक प्रतिक्रांतिकारी शक्ति बनता जा रहा है,''

(Resolution of the Third ECCI Plenum on Fascism] ogh] Volume II, Page 41, अनुवाद हमारा)

''फासीवाद जब पूंजीवादी समाज क्षरित हो रहा है, सर्वहारा क्रांति के युग में विशेषकर जहां सर्वहारा सत्त के लिए संघर्ष शुरू कर चुका है किन्तु जहां क्रांतिकारी सर्वहारा पार्टी की गैर मौजूदगी के चलते यह सर्वहारा क्रांति को संगठित करने और जनबगावत को सर्वहारा तानाशाही की स्थापना तक ले जाने में असमर्थ रहा है, उस दौर में यह प्रतिक्रांति के शास्त्रीय रूपों में से एक है।

''फासीवाद सर्वहारा से लड़ने के लिए बुर्जुआ का हथियार है, जिसे पराजित करने के लिए राज्य के पास मौजूद कानूनी तौर-तरीके नाकाफी हैं..... किंतु अपनी सामाजिक संरचना में फासीवाद एक पेटी बुर्जुआ आंदोलन है; इसकी जड़ें पूंजीवादी संकटों के परिणामस्वरूप मध्य वर्ग की दुर्भाग्यपूर्ण अवनति और युद्ध के परिणामस्वरूप वर्गच्युत तत्वों से भी जिनकी क्रांतिकारी आशायें धूमिल पड़ चुकी थीं, में थी।

''जब बुर्जुआ समाज का क्षरण लगातार जारी रहता है तब सभी बुर्जुआ पार्टियां, विशेषकर सामाजिक-जनवादी, कम या ज्यादा फासीवादी चरित्र अपनाती हैं... फासीवाद और सामाजिक-जनवाद बुर्जुआ तानाशाही के एक ही उपकरण के दो पहलू हैं। फासीवाद के विरूद्ध संघर्ष में, इसीलिए सामाजिक-जनवाद कभी भी संघर्षरत् सर्वहारा का भरोसेमंद दोस्त नहीं हो सकता।

''अपने आंतरिक अंतर्विरोधों के कारण ही फासीवाद अपनी जीत के बाद राजनैतिक तौर पर दिवालिया हो जाता है और यह अपने विघटन की ओर बढ़ता है (इटली)... अन्य जगहों पर औपचारिक जीत हासिल किये बिना ही, यह बुर्जुआ राज के खुले समर्थन और रक्षा के लिए बाध्य होता है (जैसा कि जर्मनी में), यह संकट की उसी अवस्था में पहुंच गया।'',

LSS

(Resolution on Fascism adopted by the fifth Comintern Congress, वही, Volume-II, Page-137-138, अनुवाद हमारा)

यूरोपीय फासीवाद के वर्गीय चरित्र और फासीवाद की सबसे उपयुक्त परिभाषा 1933 में दी गयी:

> *''फासीवाद वित्तीय पूंजी के सबसे ज्यादा प्रतिक्रियावादी, सबसे ज्यादा अंधराष्ट्रवादी और सबसे ज्यादा साम्राज्यवादी तत्वों की खुली आतंकवादी तानाशाही है। फासीवाद निम्न-पूंजीपति वर्ग के बीच से किसानों, शिल्पकारों, ऑफिस कर्मचारियों और सरकारी अधिकारियों (जो जीवन के अपने सामान्य हालात से बाहर फेंके जा चुके हैं) और विशेषकर बड़े शहरों के वर्गच्युत तत्वों से अपील करते हुए एकाधिकारी पूंजीवाद के लिए जन-आधार हासिल करने का प्रयास करता है। यह मजदूर वर्ग में भी घुसपैठ करने का प्रयास करता है।'',*
>
> *(The Thesis of the Thirteenth EECI Plenum of Fascism, The War Danger & the Tasks of Communists Parties, ibid, Volume-III, Page-296, अनुवाद हमारा)*

कम्युनिस्ट इंटरनेशनल की सातवीं कांग्रेस में दिमित्रोव ने फासीवाद पर अपने भाषण में कहा कि साम्राज्यवादियों को फासीवाद की जरूरत है ताकि वे आर्थिक संकट का पूरा बोझा मजदूरों पर डाल सके, कमजोर राष्ट्रों को गुलाम बना सके, उपनिवेशवादी शोषण को बढ़ा सके, दुनिया का पुनर्बटवारा कर सके, क्रांतिकारी आंदोलन के विकास को रोक सके और सोवियत संघ पर हमले को संगठित कर सके।

कम्युनिस्ट इंटरनेशनल द्वारा फासीवाद पर प्रस्तुत रिर्पोट व कार्यक्रम क्या साबित करता है।

पहला तो यह कि फासीवाद अन्य प्रतिक्रियावाद से इस मायने में भिन्न है कि यह एक जनांदोलन है। फासीवादी नेता और फासीवाद अपना जनाधार हासिल करने का प्रयास करते हैं। फासीवादी आंदोलन में न सिर्फ शहरी पेटी बुर्जुआ वर्ग शामिल होता है वरन निम्न- पूंजीपति वर्ग के देहात के हिस्से भी शामिल हुए थे। फासीवाद मजदूर वर्ग के भी एक हिस्से को अपने साथ लाने में सफल रहा था। फासीवाद इस मामले में अन्य प्रतिक्रियावाद से ज्यादा खतरनाक है। ये सभी तत्व फासीवाद के न सिर्फ समर्थक थे बल्कि उसमें सक्रिय भागीदारी भी करते हैं।

दिमित्रोव ने 1935 में कम्युनिस्ट इंटरनेशनल में अपने दिये गये भाषण में इस बात का जवाब दिया कि आखिर फासीवाद लोगों को अपने साथ लाने में सफल क्यों होता है?

फासीवाद इसलिए सफल होता है क्योंकि लफ्फाजी के साथ वही उनकी मांगों और उनकी बातों को उठाता है। फासीवाद लोगों के अंदर गहरे जड़ समाये पूर्वाग्रहों को भड़काता है और उनकी भावनाओं से भी फायदा उठाता हैं। वह कभी-कभी उनकी क्रांतिकारी परंपरा से भी फायदा उठाता है। लोगों की इन्हीं भावनाओं का फायदा उठाने के लिए जर्मन फासीवाद अपने को 'समाजवादी' कहता था। वह पूंजीवाद के खिलाफ नफरत से फायदा उठाने के लिए पूंजीवाद विरोधी लफ्फाजी का भी सहारा लेता है।

दूसरा यह कि फासीवादी आंदोलन की शुरूआत भले ही मध्यवर्ग करता हो परंतु सत्तरूढ़ होने के बाद यह एकाधिकारी और वित्तीय इजारेदारों की ही सेवा करता है। फासीवादी आंदोलन को मदद

LSS

पहुंचाने वाले थाइसेन, क्रुप, डेटर्डिग और ओवन यंग जैसे बड़े-बड़े पूंजीपतियों के समूह ही रहे हैं। यूरोपीय फासीवाद वित्तीय पूंजी के सबसे ज्यादा प्रतिक्रियावादी और साम्राज्यवादी तत्वों की खुली आंतकी तानाशाही थी और यह कि फासीवाद साम्राज्यवादी-पूंजीवादी व्यवस्था की मजबूती का नहीं बल्कि उसकी कमजोरी का परिचायक है, कि यह विश्व पूंजीवाद द्वारा अपनी ढहती हुई व्यवस्था को बचाने की सबसे ज्यादा आतंकवादी हिंसक कोशिश है। फासीवाद के वर्ग चरित्र का यह विश्लेषण फासीवादियों, उदारवादियों तथा सामाजिक-जनवादियों की उन बातों का पर्दाफाश कर देता है जो अनेक प्रकार से फासीवाद के वर्ग चरित्र को छिपाने का प्रयास करते रहे थे।

तीसरा यह भी कि फासीवाद का मुख्य निशाना सर्वहारा वर्ग और समाजवाद ही था। फासीवाद सत्त हथियाने के बाद मजदूरों की सभी संस्थाओं को भंग कर और उनके अधिकार छीनकर उन्हें निशस्त्र कर देता है । फासीवाद कम्युनिस्ट हिस्सों और सर्वहारा वर्ग की अगुआ इकाइयों को नष्ट करने की कोशिश करता है। पूर्ण फासीवादी तानाशाही कायम होने पर वह अन्य पार्टियों और संगठनों का भी दमन करता है, आतंक का राज कायम करता है और एकाधिकारी शासन स्थापित करता है।

कम्युनिस्ट इंटरनेशलन का उपर्युक्त विश्लेषण हमें फासीवाद के आने के कारणों की भी जानकारी देता है। यूरोप में फासीवाद के आने का पहला कारण बुर्जुआ अर्थव्यवस्था के दीर्घकालीन संकट में था। बाजार और मुनाफे की हवस ने प्रथम विश्व युद्ध को जन्म दिया । विश्व युद्ध में हुई भारी तबाही और दीर्घकालीन संकट ने समाज के सभी हिस्सों की आर्थिक स्थिति को प्रभावित किया। मध्यवर्ग की अच्छी-खासी संख्या या तो वर्गच्युत हो चुकी थी या होने के कगार पर थी। छंटनी, तालाबंदी ने सर्वहारा वर्ग की हालात खराब कर दी थी, भारी संख्या में बेरोजगारी थी। युद्ध ने पहले से परेशान आम जनता के कष्टों को और बढ़ा दिया था। बुर्जुआ व्यवस्था के निरंतर चले आ रहे संकटों ने गंभीर सामाजिक संकटों को जन्म दिया। लोगों का भरोसा बुर्जुआ व्यवस्था से उठने लगा। यह संकट दोनों विश्वयुद्धों के बीच-बीच में कुछ तेजी को छोड़कर निरंतर बना रहा और 1929 के बाद तो यह और भी तीखा हो गया था। उपनिवेशों में चलने वाले उपनिवेश-विरोधी संघर्षों ने इस साम्राज्यवादी संकट को और तीखा बनाने में ही योग दिया। इसने क्रांतिकारी परिस्थितियों के आधार का काम किया।

पूंजीवाद के इस आर्थिक संकट के कारण प्रथम विश्व युद्ध के बाद यूरोप के विभिन्न देशों में सर्वहारा आंदोलनों की तीव्र लहर आयी। सर्वहारा वर्ग ने बड़ी हड़तालें करके अपने आक्रोश को प्रकट किया। प्रथम विश्व युद्ध के उपरांत यूरोप की युद्धरत बड़ी और विशेषकर पराजित ताकतें काफी कमजोर पड़ चुकी थी। इसी दौरान सर्वहारा वर्ग ने इटली में फैक्ट्रियों पर कब्जा करना शुरू कर दिया तो जर्मनी में उसने पुराने शासकों के खिलाफ क्रांति कर दी। बुर्जुआ वर्ग पूरी तरह से असहाय था। इस अवस्था में न तो बुर्जुआ वर्ग में इतनी ताकत थी कि वह सर्वहारा वर्ग को निशक्त बना दे और न ही अपनी आंतरिक कमजोरियों और सुधारवादी नेतृत्व के कारण सर्वहारा बुर्जुआ सत्त को ध्वस्त करके सर्वहारा तानाशाही स्थापित कर सका। हालांकि बुर्जुआ पर निरंतर क्रांति का दबाव था। क्रांतिकारी परिस्थितियां पूर्ण रूप से परिपक्व थी। यह परिस्थितियां दूसरा कारण थी।

तीसरा जो सबसे महत्वपूर्ण कारण था, वह था, सामाजिक-जनवादी पार्टी और ट्रेड -यूनियन नेताओं का चरित्र। फासीवाद के बढ़ने और सत्त हासिल करने के लिए सामाजिक जनवादियों ने बुर्जुआ वर्ग को हर सम्भव सहयोग दिया। सामाजिक-जनवाद ने यूरोप में हर जगह सर्वहारा वर्ग के

LSS

साथ विश्वासघात किया था। सामाजिक जनवादी पार्टी और सुधारवादी ट्रेड-यूनियनों के नेताओं ने सर्वहारा हितों को तिलांजलि देते हुए प्रथम विश्व युद्ध में साम्राज्यवादी सरकारों का साथ दिया था। सामाजिक-जनवादी पार्टी, उसके नेता और सुधारवादी ट्रेड-यूनियन नेता वर्ग संघर्ष के बजाय वर्ग संश्रय और वर्ग सहयोग तथा 'शांतिपूर्ण संक्रमण' और बुर्जुआ लोकतंत्र की राजनीति पर चल रहे थे। मजदूर वर्ग का अधिकांश हिस्सा इन्हीं सामाजिक-जनवादियों के प्रभाव में था। कम्युनिस्ट पार्टियां या तो नहीं थी या अभी अपनी शैशवावस्था में थी। यदि इटली और जर्मन में ही नहीं पूरे यूरोप में सर्वहारा को क्रांतिकारी नेतृत्व मिला होता तो फासीवाद कभी भी जीत हासिल नहीं कर सकता था। सामाजिक-जनवादी पार्टियों व सुधारवादी ट्रेड-यूनियन नेताओं ने मजदूर वर्ग के साथ विश्वासघात करके और फासीवाद के उभार के समय मजदूर वर्ग में फूट डालकर और फासीवाद को पराजित करने के लिए कम्युनिस्ट इंटरनेशनल के संयुक्त मोर्चे के प्रस्ताव को बार-बार अस्वीकार करके फासीवाद का रास्ता तैयार कर दिया था। सुधारवादी नेतृत्व के विश्वासघात और बुर्जुआ वर्ग के साथ मिल जाने के कारण सर्वहारा वर्ग व अन्य मेहनतकश जनता की बहुत बड़ी संख्या जिसने क्रांति और समाजवाद में अपना विश्वास खो दिया, नेतृत्व के लिए और अपनी मांगों के लिए अन्य विकल्पों की ओर देखने लगी। और इस विकल्प को फासीवाद ने अपनी लफ्फाजी के माध्यम से उपलब्ध कराया।

इटली को छोड़कर यूरोप के अनेक देशों में फासीवाद 1929 के बाद ही मजबूत हुआ और उसके बाद लगभग 7.8 वर्षों में ही विभिन्न देशों में वह सत्त हासिल करने में सफल हो सका। 1929 की मंदी ने पूरे पूंजीवादी विश्व को अपने प्रभाव में ले लिया था। बाजार के लिए होड़ और साम्राज्यवादियों के बीच उपनिवेशों को लेकर प्रतिद्वन्दिता फिर तेज हो गयी थी। जर्मनी और इटली के सर्वहारा आक्रमणों के समय सामाजिक-जनवाद ने बुर्जुआ वर्ग की रक्षा की थी। प्रथम विश्व युद्ध के बाद से ही सामाजिक-जनवादी अनेक देशों की सरकारों के महत्वपूर्ण पदों पर रहे थे और ठीक इसी अंतराल में फासीवाद ने अपना सर उठाया था और मजबूत हुआ था। सभी देशों में सामाजिक जनवादियों ने या तो स्वयं तानाशाही चरित्र ग्रहण किया या पहले तानाशाही और बाद में फासीवाद के हाथों में सत्त सौंप दी। हर जगह बुर्जुआ सरकारों ने फासीवाद को बढ़ाने में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष मदद की थी और अंततः उन्हें सत्त सौंपी । फासीवाद ने कहीं भी कथित क्रांति संपन्न नहीं की।

सामाजिक-जनवाद जिसने मजदूरों को भ्रम में डाले रखने में काफी सफलता प्राप्त की थी का सामाजिक आधार औद्योगिक मजदूरों का ऊपरी हिस्सा था। इसे साम्राज्यवाद लूट का एक हिस्सा घूस के रूप में देता था, इसी वजह से यह मजदूर वर्ग के ऐसे हिस्से को भ्रष्ट करने में सफल रहा। सामाजिक-जनवाद की वर्ग सहयोग की राजनीति का यह आधार था। दीर्घकालीन संकट के कारण और मुनाफे को बढ़ाने की वजह से अब बुर्जुआ सर्वहारा के इस हिस्से को पहले की तरह रियायतें और सुविधायें नहीं दे सकता था। ऐसे में स्पष्टतः सामाजिक-जनवाद के सामाजिक आधार पर आर्थिक संकट की मार पड़नी थी। अब सामाजिक -जनवाद का मजदूर वर्ग में पहले जैसा प्रभावी असर नहीं हो सकता था। उसके कम्युनिस्टों की ओर जाने का खतरा बढ़ गया था। सामाजिक-जनवाद अब पूंजीपति वर्ग के लिए पूर्व की भांति उपयोगी नहीं रह गया था। अपने संकट का बोझ और ज्यादा मजदूरों पर डालने और उससे पैदा होने वाले प्रतिरोध को कुचलने के कारण राज्य के पुराने तौर-तरीके (संसद) आदि पर्याप्त नहीं थे, उसे फासीवाद की आवश्यकता थी। जैसा कि कहा जाता है कि क्रांति और प्रतिक्रांति दोनों एक ही प्रक्रिया से उत्पन्न होते हैं। उसी प्रक्रिया से रूस में क्रांति हुई तो यूरोप के कई देशों में फासीवाद के रूप में प्रतिक्रांति।

LS8

रूसी क्रांति और समाजवाद एक अन्य कारण था। वह गृहयुद्ध से निकलकर समाजवादी निर्माण की ओर अग्रसर हो चुका था। रूसी क्रांति यूरोप के सर्वहारा के सामने स्पष्टत: दो मॉडलों को रख रही थी। यह सर्वहारा वर्ग को क्रांति की प्रेरणा देती थी। यूरोपीय शासक समाजवादी विचारों से निरंतर आतंकित रहते थे क्योंकि सर्वहारा वर्ग एक जगह सत्त पर कब्जा कर चुका था।

इटली, जर्मनी आदि देशों में फासीवादी आंदोलन से यह भी स्पष्ट होता है कि फासीवाद कैसे एक स्वतंत्र आंदोलन के रूप में विकसित होता है और वह सत्त हासिल कर लेता है? इटली में फासीवाद के सत्तशीन होने से पहले ही इटली समेत यूरोप के अनेक देशों में फासीवाद भ्रूण रूप में दिखायी देने लगा था। इन फासीवादी गुटों को बुर्जुआ वर्ग का एक हिस्सा आर्थिक सहयोग करता था।फिर भी इन फासीवादी गुटों का निर्माण बुर्जुआ वर्ग से स्वतंत्र रूप में हुआ था। इटली और जर्मनी दोनों का ऐतिहासिक अनुभव यह दिखाता है कि क्रांतिकारी लहर के समय फासीवादी गुट हाशिये पर खड़े थे और उन्हें कोई जनसमर्थन भी हासिल नहीं था। फासीवाद ने बुर्जुआ व्यवस्था के विघटन की स्थिति में और मजदूर आंदोलन की आंतरिक कमजोरियों का फायदा उठाकर जनता में मौजूद असंतोष को अपने पक्ष में खड़ा करके जनाधार हासिल किया। इस दौरान बुर्जुआ सरकारें फासीवादी गुटों की हरकतों की सामान्य तौर पर अनदेखी करती रही या बुर्जुआ राज सत्त अप्रत्यक्ष तौर पर सहयोग करती रही।

जब फासीवादी ताकतें काफी मजबूत हो गयीं और उन्होंने काफी जनाधार भी हासिल कर लिया और यहां तक कि वे सत्त हासिल करने की स्थिति में आने लगीं। बुर्जुआ वर्ग का एक बड़ा हिस्सा फासीवाद के रूप में ही अपनी समस्याओं का समाधान देखने लगा और तब उसने फासीवाद को अपने में समाहित कर लिया और उसे अपनी सेवा में लगा लिया। वैसे भी संकटकाल की स्थिति में बुर्जुआ सरकारें स्वयं भी अनेक तानाशाहीपूर्ण कदम उठाती रही थीं। यहां यह भी स्पष्ट करना जरूरी है कि यदि फासीवाद बुर्जुआ वर्ग के हिचकिचाहट के बावजूद भी सत्त पर किसी तरह काबिज होने में सफल हो जाता है तब बुर्जुआ वर्ग अंतत: उसे अपना समर्थन व सहयोग देने लगता है और उसे अपना लेता है।

LS8

II

नव फासीवादी उभार

द्वितीय विश्वयुद्ध में फासीवादियों को पराजित कर दिया गया था। स्पेन को छोड़कर कहीं भी फासीवाद अपनी सत्त बचाने में सफल नहीं रहा। यधपि उसने भी अपने रूप को काफी रूपांतरित कर लिया था। कम्युनिस्टों, सर्वहारा वर्ग और जनतंत्र के समर्थकों ने हर देश में फासीवादियों के विरूद्ध जमकर मुकाबला किया था। स्पेन में फासीवाद के विरूद्ध संघर्ष में फासीवाद-विरोधी मोर्चे की पराजय अवश्य हुई थी परंतु इस मोर्चे के अनेक सदस्यों ने फासीवाद-विरोधी मोर्चे और छापामार युद्ध

के अनुभवों को अनेक देशों के फासीवादियों के विरूद्ध संघर्ष में इस्तेमाल किया था। फ्रांस, युगोस्लाविया और ग्रीस के छापामार युद्ध का फासीवाद-विरोधी संघर्ष में एक महत्वपूर्ण स्थान बना।

फासीवाद पराजित हुआ था। परंतु उसके पुनः पैदा होने की संभावना को यह पराजय समाप्त नहीं कर सकी।बर्तोल ब्रेंख्त ने कहा था कि जिस गर्भ से फासीवाद का जन्म हुआ था उसमें अभी फासीवाद को जन्म देने के क्षमता बची हुई है। उनकी यह टिप्पणी सच साबित हुई। पिछली सदी के' 70 के दशक में ही अनेक फासीवाद गुट मजबूती के साथ उभर आये थे। फासीवादी गुटों का यह उभार मात्र यूरोप तक ही सीमित नहीं था, इसने अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका, अफ्रीका तथा एशियाई देशों को भी अपनी गिरफ्त में ले लिया था। जर्मनी में नात्सी गुटों ने अपना पुनर्गठन कर लिया था, इटली में इटालियन सामाजिक आंदोलन (एम.एस.आई.) फ्रांस में पोउजावाद, (ओ.ए.एस.) और दगालवाद, जापान में सोका गकाई, अस्ट्रिया में वर्ग आइजेल बुंद, अमेरिका में कू-क्लक्स-क्लान, ब्राजील में गेटुलवाद, अर्जेन्टीना में पेरोंवाद, दक्षिण अफ्रीका में ओसेवा ब्रांडवाग आदि गुटों–समूहों के रूप में नवफासीवादी/नवनात्सियों ने अपनी ऊर्जा को पुनः एकत्र कर लिया था। और यह एक विश्वव्यापी रूझान बन गया। ऐसा कैसे हुआ?

द्वितीय विश्व युद्ध में फासीवादी शक्तियों की पराजय और सोवियत संघ के विजय रथ के पश्चिम की दिशा में आगे बढ़ने के दौरान ही साम्राज्यवादी अमेरिका, ब्रिटेन की प्राथमिकता बदल गयी थी। ये शक्तियां लाल बढ़त को और आगे बढ़ने से रोकना चाहती थीं। फासीवाद का सम्पूर्ण उन्मूलन न तो ये शक्तियां चाहती थी और न ही अब उन्होंने इसे अपनी प्राथमिकता पर रखा। अमेरिका, ब्रिटेन जैसी साम्राज्यवादी ताकतों ने फासीवाद के उस क्रूर और नग्न रूप को खत्म करने का प्रयास किया था तो इसीलिए कि वे उनके अपने लिए खतरा बन गयी थी परंतु उन्होंने नात्सी गुटों को पूर्णतया नष्ट भी नहीं किया क्योंकि साम्राज्यवादी-पूंजीवादी व्यवस्था के लिए इन फासीवादी गुटों की प्रासंगिकता समाप्त नहीं हो गयी थी। कम्युनिस्टों से लड़ने के नाम पर इन फासीवादी गुटों की जरूरत थी और इसी वजह से उनकी सहायता की गयी। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से ही नवफासीवादी नवनात्सी गुटों ने अपने को पुनर्गठित करने के प्रयास कर दिये थे। उनका पहला प्रयास था नात्सी नेताओं को बचाना, जिन पर मुकदमा चलने की संभावना हो, गिरफ्तार नात्सियों की कानूनी मदद करना, युद्ध अपराधियों को रिहा कराने के लिए आंदोलन चलाना और दुनिया के विभिन्न हिस्सों के नवनात्सी गुटों की आर्थिक सहायता करना। इन नवनात्सी गुटों के नेता अभी भी सारी दुनिया का स्वामी बनाने का सपना देखते थे। इन नवनात्सियों ने इस नये आंदोलन को संगठित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठन गठित करने का प्रयास किया। पहले नवनात्सी अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हिटलर के सर्वश्रेष्ठ सैन्य दल के बचे लोगों ने की। इसके बाद 1950 व 1951 में यूरोपीय सामाजिक आंदोलन (मालमो) और यूरोपीय अभिनव व्यवस्था (नोए) जैसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना हुई 1960-63 में यूरोप में 'यून यूरोप' और 'ओआस' जैसे अन्य नवफासीवाद अंतर्राष्ट्रीय संगठन स्थापित हुए। इसी दशक में 'यूरोपा फ्रंट' और 'राष्ट्रीय यूरोपीय पार्टी' (नुप), 'राष्ट्रीय समाजवाद विश्व संघ (बुंस), 'नादर्न यूरोपीय लीग' (नेल) और 'उस्तारो' आदि संगठन स्थापित हुए। कुल मिलाकर 1970 के लगभग मध्य तक नवफासीवादी दल और गुट 60 पूंजीवादी देशों में खुलकर काम कर रहे थे। उनके पास पर्याप्त धन था और उन सबके अंतर्राष्ट्रीय संगठन थे। इन संगठनों में आपसी संबंध भी थे हालांकि वे इन संबंधों को छिपाने का प्रयास करते रहे थे। इन संगठनों के बीच रणनीतियों और काम करने के तौर-तरीकों को लेकर मतभेद भी रहते थे।

LS8

हिटलर और मुसोलिनी लोगों के बीच इतने बदनाम हो चुके थे कि उनके नाम पर या फासीवाद के आधार पर सीधे-सीधे तब काम करना मुश्किल था। वे हमेशा अपने फासीवादी चरित्र को छुपाने का प्रयास करते थे। विश्व युद्ध से बर्बाद-तबाह यूरोप, अमेरिकी सहयोग से अपने पैरों पर पुनः खड़ा होने का प्रयास कर रहा था और फासीवाद का वीभत्स व खौफनाक चेहरे को यूरोप की जनता ने जितने करीब से देखा था, इन दोनों स्थितियों के कारण इन नवफासीवादी/नव नात्सी गुटों/संगठनों को कोई खास समर्थन नहीं मिल रहा था। अलग-अलग संगठनों के पास कुछ एक हजार कट्टर फासीवादी ही थे जो कम्युनिस्टों और यहूदियों पर हमले करते रहते थे।

इन नवफासीवादियों और नवनात्सियों की ताकत में पिछले तीन दशकों में काफी इजाफा हुआ। मुसोलिनी की पोती जो फासीवाद समर्थक थी इटली की संसद का चुनाव जीती, जापान में नवफासीवादियों की पार्टी काफी शक्तिशाली बनी, रूस में झिरनोव्यस्की, फ्रांस में लीपेन आदि काफी शक्तिशाली बनकर उभरे। इन्हें यूरोप की जनता के कुछ हिस्सों का समर्थन भी मिलने लगा हालांकि व्यापक जनता अभी भी फासीवादियों को पसंद नहीं करती थी। नवफासीवादियों की इस बढ़त का क्या कारण था? इस वृद्धि का कारण यूरोप व विश्व पूंजीवादी व्यवस्था में आया अर्थव्यवस्था का आम संकट था। यूरोप पुनर्निर्माण के दौर से गुजरकर उठ खड़ा हुआ था। और यही हाल जापान का भी था। पुनर्निर्माण के दौर में इन अर्थव्यवस्थाओं में तेजी आयी थी। परंतु यूरोप सहित पूरा पूंजीवादी विश्व '70 के दशक में ठहराव का शिकार हो गया। पूंजीवादी व्यवस्था के इस आम संकट ने इन सभी शक्तियों के बीच बाजार के संकट को बढ़ा दिया। अर्थव्यवस्था के ठहराव का यह अंतराल काफी लंबा रहा जो आज तक बना हुआ है।

विगत तीन दशकों से विश्व पूंजीवादी व्यवस्था का ठहराव कभी-कभी आने वाली तेजी और मंदी के बावजूद बना रहा । विश्व अर्थव्यवस्था के इस दीर्घकालिक ठहराव ने पूरे विश्व में भारी पैमाने पर बेरोजगारी को बढ़ाया। विश्व अर्थव्यवस्था की इस हालत के कारण ही यूरोप तथा अमेरिका के अनेक उद्योगों ने अपना उत्पादन कम कर दिया। अपने इस आम संकट से निपटने के लिए दुनियाभर के शासकों ने अपने मजदूर वर्ग व अन्य मेहनतकश जनता पर हमला बोल दिया। इस दौरान उसने जनता को मिलने वाली सामाजिक सुविधाओं में भारी कटौती की।

पिछले दशक में यह आम संकट कम होने के बजाय गहराया ही है। विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के अनेक देशों में आने वाले मुद्रा के संकटों ने इस आम संकट को और ज्यादा तीक्ष्ण ही बनाया है। अर्थव्यवस्था की इस दीर्घकालिक समस्या से जनअसंतोष गहराया है और विभिन्न देशों में अलग-अलग समयों में इसने अपने को अनेक प्रकार से अभिव्यक्त किया है। मूलतः इन्हीं आंतरिक कारणों से नवफासीवाद/नवनात्सीवाद ताकत ग्रहण करके उठ खड़ा हुआ।

नवफासीवादी आंदोलन जनता के इसी असंतोष का फायदा उठा रहा है। सोवियत संघ के विघटन से पूर्व ये नवफासीवादी जनता के कष्टों के लिए अमेरिका और गैर-यूरोपियनों को दोषी ठहराते थे तथा सामाजिक-साम्राज्यवादी सोवियत संघ और कम्युनिस्टों को भी अपना निशाना बनाया करते थे। ये संगठन 'तीसरे विकल्प' का सपना पाले हुए थे। नव नात्सी संगठनों ने यहूदियों को पुनः अपना निशाना बनाया । ये संगठन जनता के पूर्वाग्रहों को और ज्यादा भड़काते रहे हैं और उनकी भावनाओं का इस्तेमाल करते रहे हैं। पिछले दिनों यूरोप में गैर यूरोपीय मूल लोगों पर हमलों में तेजी आयी है। यूरोप की विभिन्न पार्टियों के नेताओं ने अक्सर स्वयं जनता की भावनाओं को भड़काया और इस प्रकार उन्होंने अंततः इन नवफासीवादियों की ही मदद की।

LS8

आज यूरोप की जनता की एक अच्छी-खासी तादाद में यह धारणा मौजूद है कि उनकी समस्याओं के कारण गैर-यूरोपीय हैं। गैर-यूरोपीयों की भारी तादाद के कारण ही उन्हें रोजगार नहीं मिल रहा है। दूसरी धारणा अमेरिका को लेकर है। आज ज्यादातर यूरोपीय अमेरिका से नफरत करते हैं। वे अमरीका को यूरोप की बरबादी का कारण समझते हैं। उनका मानना है कि यूरोप का बाजार अमेरिकी माल से पटा पड़ा है। वे उसके सैन्य और मौद्रिक दोनों प्रभुत्वों के प्रति आशंकित हैं। इन भावनाओं को यूरोपीय शासकों ने खूब उभारा।

इस कारण फासीवादी ऐक्यबद्ध यूरोप की वकालत करते हैं। वे यूरोपीय सेना के पक्षधर हैं जो नाभिकीय शक्ति से लैस हो। ये फासीवादी एक ऐसे यूरोप का सपना देखते है जिसमें पश्चिमी यूरोप के देश ही नहीं पूर्वी यूरोप के देश भी सम्मिलित हों, जो अमेरिका के खिलाफ एक मजबूत ताकत बनकर खड़ा हो सके।

इस सभी नवफासीवादियों की बढ़त मजदूर वर्ग, कम्युनिस्टों तथा सभी जनवादी ताकतों के लिए चिंता का सबब बन रही है। क्योंकि वे अभी सत्त से भले ही दूर हों परंतु व्यवस्था का संकट और गहराने पर इन नवफासीवादियों को और ज्यादा पुनः समर्थन मिल सकता है। यदि आज नवफासीवादी सत्त से दूर हैं तो इसीलिए कि उनके मार्ग में दो बड़ी बाधाएं हैं । एक तो यह कि अभी पूंजीवादी व्यवस्था का संकट उतना तीखा नहीं है कि पूंजीवादी संबंधों में अस्थिरता पैदा हो गयी हो और सर्वहारा वर्ग द्वारा क्रांति कर दिये जाने का भय हो। ऐसे में पूंजीपति वर्ग शासन के संसदीय व अन्य रूपों से ही शासन करने में सक्षम हैं इसलिए शासक वर्ग का समर्थन व सहयोग इन नवफासीवादियों को अभी बहुत ज्यादा नहीं मिल रहा है। दूसरा कारण यह है कि जन समुदाय में फासीवाद विचारों की अभी भी कोई खास स्वीकार्यता नहीं है। यूरोप के लोग अभी भी फासीवाद से नफरत करते हैं। फिर भी नवफासीवादियों द्वारा प्रस्तुत चुनौती व खतरे का मुकाबला करने के लिए उसे सत्त में पहुंचने से पूर्व ही नेस्तानबूत करने की जरूरत है।

LSS

III

भारत में फासीवादी रूझान

यूरोपीय फासीवाद के मूलतत्वों, उसके चरित्र, उन परिस्थितियों तथा उसके आने के कारणों को जान लेने के पश्चात, इसकी रोशनी में अपने देश में मौजूद फासीवाद की समस्या को आसानी से समझ सकते हैं।

भारत में फासीवादी रूझान, प्रवृत्तियां मूलतः राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ, शिवसेना व जमात-ए-इस्लामी जैसे संगठनों में हैं। भारत में यह रूझान खालिस्तानियों में भी मौजूद रहा है। हम यहां अन्य रूझानों या प्रवृत्तियों को लेने के बजाय संघ को ही लेंगे क्यों कि वही सबसे ज्यादा और प्रातिनिधिक रूप में फासीवादी रूझान/प्रवृत्तियों को स्पष्ट करता है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है कि फासीवाद देश-काल-वातावरण के लिहाज से अलग-अलग रूप ग्रहण करता है। भारत में भी फासीवाद ताकतों ने यूरोप से भिन्न एक अलग रंग

रूप ग्रहण किया, इसके बावजूद कि फासीवाद के मूल तत्व और बुनियादी विशेषतायें भारतीय फासीवाद की भी अंग है।

उपर्युक्त विषय पर आने से पहले अति संक्षिप्त नजर संघ के इतिहास पर डाल लेते हैं।

संघ का गठन 1925 को विजयादशमी वाले दिन किया गया। इसने शुरू से ही गैर हिन्दुओं विशेषकर मुसलमानों को अपना मुख्य शत्रु बताया। राष्ट्रीय आंदोलन से यह पूर्णतया अलग ही रहा। 1946 तक इस संगठन का कोई खास प्रभाव नहीं था। देश में होने वाले सांप्रदायिक दंगों के समय ही इसे थोड़ी बहुत जीवन शक्ति मिलती थी। इसकी जो थोड़ी-बहुत ताकत बढ़ी भी तो वह 1946 के बाद हुए सांप्रदायिक दंगों के दौरान। परंतु महात्मा गांधी की हत्या के बाद संघ को ही उनकी हत्या के लिए जिम्मेदार माना जाता था। उस समय जनता ने संघ के कार्यालयों और पदाधिकारियों पर हमले भी किए थे। 1948 में इस पर प्रतिबंध लगा दिया गया। इसके दूसरे सरसंघचालक गोलवलकर ने संघ का वैचारिक दृष्टिकोण रखा। इस संगठन का शुरूआती आधार महाराष्ट्र के ब्राह्मणों में था और वही इसके नेतृत्व में थे। इसके बाद लंबे समय तक इसका प्रभाव व्यापारियों, दुकानदारों, क्लर्कों और छोटे व्यवसायियों तक ही था। यह संगठन पूर्णतया सवर्ण पुरूषों का रहा है। इस संगठन की गतिविधियां '60 के दशक में पुनः व्यापक गति पाती हैं। 1962 के चीन-भारत युद्ध के दौरान इसकी कुछ साख बढ़ी। 1963 में नेहरू ने इस संगठन को गणतंत्र दिवस की परेड में एक स्वतंत्र दस्ते के रूप में शामिल होने की इजाजत दी। भारतीय पूंजीपतियों के ही प्रतिनिधि नेताओं मसलन विनोबा भावे, जयप्रकाश नारायण आदि के साथ सहयोग करते हुए संघ से जुड़े राजनीतिक संगठनों को अपना प्रभाव बढ़ाने का मौका मिला। विशेषकर जे.पी आंदोलन (1974-75) और फिर बाद में बनने वाली जनता पार्टी की सरकार के दौरान। फिर भी '70 के दशक के अंत तक संघ परिवार का कोई व्यापक असर नहीं था। लेकिन उसके बाद संघ परिवार का असर काफी बढ़ा, विशेषकर हिंदी भाषी क्षेत्रों में। आज संघ द्वारा बनाये गये संगठन समाज के लगभग सभी वर्गों-तबकों में सक्रिय हैं। इस दौरान संघ परिवार का आधार भी बहुलांशतः सर्वणों में होते हुए भी सभी समूहों के बीच में फैल रहा है।

LS8

अब हम मूल प्रश्न पर आते हैं कि संघ को फासीवादी कहा जाये या नहीं और क्या हर धार्मिक कट्टरपंथ को फासीवादी कहा जा सकता है?

हर प्रकार का धार्मिक कट्टरपंथ निश्चित ही फासीवादी नहीं होता लेकिन जहां तक संघ का सवाल है तो वह अपनी प्रकृति, अपने स्वरूप और अपनी कार्यवाहियों में और उस विचारधारात्मक रूप में जिसमें यह अपने धार्मिक कट्टरपंथ का व्यवहार करता है और उसे फैलाता है, के कारण ही यह अनेक दूसरे धार्मिक कट्टरपंथियों से अलग है।

यह संगठन पितृसत्तात्मक मूल्यों के आधार पर गठित हुआ एक अर्द्धगुप्त संगठन है। इसमें कोई चुनाव नहीं होते। इसका कोई संविधान नहीं है। पदाधिकारियों के मनोनयन, कार्यकर्ताओं और सदस्यों का सारा लेखा-जोखा गुप्त रहता है। इस संगठन से 60 से ज्यादा संगठन या मोर्चे संबद्ध हैं जो सभी मोर्चों मसलन वैधानिक (भाजपा), अर्द्धवैधानिक (विहिप व बजरंग दल जैसे) से लेकर प्रिंट मीडिया, शिक्षा जगत, अनुसंधान के क्षेत्रों, मजदूरों, किसानों, विद्यार्थियों, और बुद्धिजीवियों तक काम करते हैं। इसमें कार्यकर्ताओं से लेकर सर संघचालक तक एक श्रृंखला है जो एक फासीवादी ढांचे का निर्माण करती है। और यह सब हिंदू राष्ट्र और हिन्दू संस्कृति के विचारों से बंधे होते हैं। संघ

अपने आह्वानों अपनी गोलबंदी के तरीकों में, संगठित हिंसा के तरीकों में, कानूनों की धज्जियां उड़ाने में, कानूनी और गैरकानूनी तौर-तरीकों, आस्था को सर्वोपरि रखने में लफ्फाजी आदि के कारण ही एक फासीवादी संगठन है। उपर्युक्त सारी बातों को इसने बाबरी मस्जिद के ध्वंस और गुजरात नरसंहार के समय बखूबी लागू किया।

संघ धर्म के आधार पर अपना राज कायम करना चाहता है उसके 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' के अनुसार हिंदू समुदाय ही केवल इस देश के प्रति वफादार हो सकता है। यदि दूसरे धर्मों के लोग रहना चाहते हैं तो वे केवल हिंदू बनकर ही रह सकते हैं। संघ के सांस्कृतिक राष्ट्रवाद के अनुसार वही सच्चा नागरिक हो सकता है जिसकी मातृभूमि और पुण्यभूमि (धर्म) एक ही हो। भारतीय संघी फासीवाद राष्ट्रवाद की बातें करता है और उसमें धर्म का तत्व ही ज्यादा होता है।

संघ का 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' भौगोलिक क्षेत्र का एक इंच भी हाथ से नहीं जाने देना चाहता है। वह राष्ट्रवादी भावनाओं का जमकर इस्तेमाल करता है। उसके सांस्कृतिक राष्ट्रवाद में पाकिस्तान और बांग्लादेश ही नहीं वरन्वर्मा, श्रीलंका, नेपाल और अफगानिस्तान को भी शामिल किया जाता है। संघी फासीवाद की योजना में भौगोलिक विस्तार और आक्रामक सैन्य हिंदू राष्ट्रवाद शामिल है।

अतीत का गौरव गान करके और उसे विकृत करके संघी नेता हिन्दू राष्ट्रवाद को उभारने की कोशिश करते हैं। 'राम राज्य' की स्थापना उनका प्रतीक वाक्य बन गया है। अपने इसी पुनरूत्थानवादी दृष्टिकोण के कारण वे वर्णव्यवस्था के समर्थक हैं। हिंदू ब्राह्मणवादी पितृसत्तत्मक दृष्टिकोण के कारण वे नारियों को पुन:घर के अंदर ढकेलना चाहते हैं। संघी एक ऐसा राज्य कायम करना चाहते हैं जो नाभिकीय ताकत से लैस हो और सभी राष्ट्रीयताओं को जिसमें एक केन्द्रीकृत व एकीकृत शासन के अधीन रखा जाये। उसका नारा है: एक देश, एक राज्य, एक विधानसभा, एक कार्यपालिका।

इसके साथ ही संघ कम्युनिस्टों का सबसे ज्याद कट्टर दुश्मन है और साम्राज्यवाद का समर्थक हैं। संघ वर्ग संघर्ष का विरोधी है। वह पूंजीपतियों व मजदूरों और शोषकों व शोषितों में किसी भी प्रकार का भेद नहीं करता है अगर वे दोनों हिन्दू हैं और इस प्रकार वह वर्ग संघर्ष पर पर्दा डालने की कोशिश करता है।

भारतीय फासीवादी भी लफ्फाजी में कम माहिर नहीं हैं। अपने असली चरित्र को छुपाने के लिए वे भी सामान्यत: 'समाजवाद', 'साम्यवाद', 'सच्चा जनतंत्रवादी', 'एक ऐसे गणतंत्र का निर्माण जिसमें नस्ल, जाति, धर्म का बंटवारा न हो' आदि की बातें करते हैं।

उपर्युक्त भारतीय किस्म की फासीवादी प्रवृत्तियों/रूझानों को व्यक्त करता है। इसकी विशिष्टताओं पर भारतीय समाज, इतिहास व राजनीति का स्पष्ट प्रभाव दिखायी पड़ता है। फिर भी यह कई मायनों में यूरोपीय फासीवाद के समान है तो कुछ मामलों में भिन्न भी। अब हम इसकी समानता और भिन्नता को देखें।

LS8

यूरोपीय फासीवाद के साथ समानता और भिन्नता

संघी फासीवाद और यूरोपीय फासीवाद के मूल तत्व बहुत कुछ मिलते हैं मसलन उग्र राष्ट्रवाद, लफ्फाजी, अमानववाद, सर्वसत्तत्मक राज्य और एक दलवाद, अंधविश्वासवाद, नारी के प्रति दृष्टिकोण, जीवन के प्रति दृष्टिकोण। हालांकि उनकी बातों में भारतीय समाज और इतिहास की छाप होती है परंतु अंतर्वस्तु में उपर्युक्त दोनों में ही समान तत्व बनते हैं।

यूरोपीय फासीवाद की तरह संघ का भी आधार मध्यवर्ग ही है। संघी फासीवादी भी देश के अल्पसंख्यक समुदायों को दुश्मन के रूप में चिह्नित करते हैं लामबंदी के तरीकों, वैधानिकता के प्रति अवमानना, संगठित हिंसा, अर्द्धगुप्त ढांचे और कार्यवाहियां आदि बातें उन्हें एक दूसरे के समान बना देती हैं।

संघी फासीवाद के विकास में भी वहां की बुर्जुआ लोकतांत्रिक सरकारों व संशोधनवादियों का मूक व अप्रत्यक्ष तौर पर समर्थन रहा है जैसा कि यूरोप में था।

फिर भी, इस समानता के बावजूद भी परिवेश के प्रभाव के कारण उनमें भिन्नता भी कम नहीं है। पहली भिन्नता तो यह है कि नस्लवाद आम तौर पर यूरोपीय फासीवाद की समान विशेषता थी परंतु यहां संघ धार्मिक समूह के आधार पर दुश्मन चिह्नित करता है।

दूसरी भिन्नता यह है कि यूरोपीय फासीवादी संगठनों का संघ जैसा संगठनों का जाल कहीं प्रतीत नहीं होता। वे तो प्रथम विश्वयुद्ध के बाद के बुर्जुआ व्यवस्था के बिखराव की अवस्था में पैदा हुए थे और बुर्जुआ ने अमूनन 15-16 वर्षों में ही उन सभी को अपनी सत्त सौंप दी। परंतु भारतीय शासक वर्ग अभी भी संघ को पूरी तरह ग्रहण नहीं कर पाया है। संघ को शासक वर्ग की ओर से पहले जो छिटपुट सहयोग ही मिलता था। उसमें '60 के दशक के मध्य से अब तक काफी वृद्धि हुयी है। भारतीय शासक वर्ग मूलत: कांग्रेस को ही अपना समर्थन और सहयोग देता रहा।

तीसरी भिन्नता यह है कि संघी, कम्युनिस्टों से मुसलमानों की तुलना में कम नहीं वरन्ज्यादा ही नफरत करते हैं परंतु फिर भी अभी संगठित हिंसा का निशाना मुसलमानों के समान ही कम्युनिस्ट और मजदूर नहीं बनाये गये हैं जैसे कि यूरोप में बनाये गये थे। इसका कारण भी हमारे यहां यूरोप जैसे सशक्त मजदूर आंदोलन का अभाव है। इसी का एक परिणाम यह भी है कि हमारे यहां के संघी फासिस्टों को समाजवाद को लेकर उतनी ज्यादा लफ्फाजी नहीं करनी पड़ती।

यूरोपीय फासीवादियों को मेहनतकश जनता तथा मध्यवर्ग के जितने बड़े हिस्से का समर्थन प्राप्त था, संघ अपने इतिहास के 75 वर्षों के बाद भी यह सब हासिल करने में असफल रहा है।

यूरोपीय फासीवाद क्रांतिकारी संकट के काल में पैदा हुआ था जबकि संघी फासीवाद के उद्भव के समय ऐसी कोई विशेष परिस्थितियां नहीं थी। यूरोप में फासीवादी आंदोलन का उद्भव और विकास प्रथम विश्व युद्ध के बाद के समय में हुआ। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पश्चिमी यूरोप के अनेक देशों में मजदूर आंदोलन की तीव्र लहर उठी थी तो दूसरी ओर 1917 में मजदूर वर्ग रूस में सत्त हासिल कर चुका था। पश्चिमी यूरोप के देशों में आये तीव्र मजदूर उभार के बावजूद मजदूर वर्ग सुधारवादी नेतृत्व के कारण सत्त हासिल कर पाने में असफल रहा। क्रांति की असफलता से

LSS

निराश सर्वहारा वर्ग का एक हिस्सा फासीवादी आंदोलन में शरीक हुआ। बुर्जुआ व्यवस्था के प्रति मोहभंग, मध्यवर्ग की डांवाडोल स्थिति, प्रथम विश्वयुद्ध की पराजय से उत्पन्न राष्ट्रीय अपमान जैसी भावनाओं के बीच फासीवादी आंदोलन अपना जनाधार हासिल करते हुए मजबूत हुआ और सत्त हासिल करके इसने फासीवादी चरित्र को पूरी तरह प्रदर्शित किया। परंतु भारतीय फासीवाद का उद्‌भव और विकास उपर्युक्त परिस्थितियों की देन नहीं है। सांप्रदायिक फासीवाद लंबे समय तक विचारधारात्मक आंदोलन के रूप में ही मौजूद रहा है। सांप्रदायिक फासीवाद भारतीय समाज की जटिलताओं और यूरोप जैसी क्रांतिकारी संकट की गैर मौजूदगी, राष्ट्रीय अपमान जैसी भावनाओं व घोर निराशाओं के अभाव के कारण न तो वहां जैसा जनाधार हासिल करने में सफल रहा है और न ही सत्त प्राप्त करने में। इसके बावजूद कि पिछले दशकों में संघी फासीवाद अपेक्षाकृत काफी शक्तिशाली हुआ है। और इसका जनाधार भी पूर्व की तुलना में काफी व्यापक हुआ है। भारतीय फासीवादी विभिन्न क्षेत्रीय दलों के सहयोग से केन्द्र में सत्तशीन हैं तथा अनेक राज्यों में भी वे सत्तशीन हैं। फासीवादी इस स्थिति का अपनी फासीवादी विचारधारा के प्रसार में लाभ उठा रहे हैं। इसके चलते उन्होंने केन्द्र व राज्य सरकारों के विभिन्न संस्थानों के उच्च पदों पर अपने आदमियों को बैठाया है। भारतीय समाज की जटिलता, आर्थिक व राजनीतिक हालात तथा शासक वर्गों की हिचकिचाहट की वजहों से वे अपने पूर्ण फासीवादी ऐजेण्डों को लागू कर पाने में सफल नहीं हो पा रहे हैं। इस वजह से सांप्रदायिक फासीवाद, फासीवादी प्रवृत्तियां प्रदर्शित करने के बावजूद अपने पूर्ण फासीवादी चरित्र को प्रदर्शित नहीं कर पाया है। भारत में सांप्रदायिक फासीवाद अभी भी एक फासीवादी आंदोलन के रूप में ही ज्यादा है।

यूरोपीय फासीवाद के विकास में आम तौर पर सामाजिक-जनवादियों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभायी और उन्हें सत्तरूढ़ करवाने में भी। परंतु हमारे यहां भाकपा, माकपा और भाकपा (माले) उतने प्रभावकारी नहीं हैं। इसलिए वे वैसी भूमिका अदा नहीं कर सकते। यूरोपीय फासीवादी ताकतें पुरानी औपनिवेशिक व साम्राज्यवादी देशों में उभरी थीं इसलिए वे वित्तीय पूंजी के हितों का प्रतिनिधित्व करती थीं। जबकि भारत अब तक पिछड़ा पूंजीवादी देश है। यहां का फासीवाद भारतीय पूंजी के सबसे ज्यादा प्रतिक्रियावादी, सबसे ज्यादा अंधराष्ट्रवादी और सबसे ज्यादा विस्तारवादी पूंजीपतियों के हितों की सेवा करना चाहता है। इसलिए दोनों (यूरोपीय व भारतीय) के नारे व नीतियों में फर्क है।

भारत में फासीवाद के मौजूदा उभार के कारण

भारत में फासीवादी संघ की बढ़ोत्तरी का काल मोटे तौर पर सत्तर का दशक ही है। यही वह समय भी है जब दुनिया के शेष हिस्सों विशेषकर यूरोप में पुनः फासीवाद अपने को पुनर्गठित करता हुआ उभर कर सामने आ गया। इस अर्थ में भारतीय फासीवादी ताकतों का ताकत ग्रहण करना फासीवाद के विश्व रूझान का ही एक हिस्सा है।

फिर भी, संघ की बढ़ोत्तरी हमारे देश की आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक समस्याओं से ही मूलतः सम्बन्धित है। यदि अपने जन्म के बाद से संघ एक लंबे समय तक कोई सशक्त ताकत न बन सका तो इसीलिए कि आजादी पूर्व भारतीय जनता की आकांक्षाओं को राष्ट्रवादी आंदोलन

LS8

अभिव्यक्त कर रहा था। और बाद के दिनों में देश के पूंजीवादी विकास ने समाज के विभिन्न हिस्सों को अपने जीवन को बेहतर बनाने के अवसर उपलब्ध कराये थे। '60 के दशक के मध्य तक आते-आते नेहरू माडल की कमियां और खामियां उभर कर सामने आ गयी। साम्राज्यवाद के युग में और अपनी विशिष्ट कमजोरियों के कारण अतिशीघ्र संकटग्रस्त भारतीय पूंजीवाद अब देश की जनता को और दे पाने में अक्षम साबित होने लगा। इसकी पहली अभिव्यक्ति संविद सरकारें बनने में तथा बाद में जे.पी. आंदोलन व आपातकाल के रूप में सामने आयी। यही से हमें संघ मजबूती ग्रहण करता दिखायी देता है। वह व्यवस्था से पैदा हुए मोहभंग और असंतुष्टि का फायदा उठाने की कोशिश करता है। इसके साथ ही आजादी के बाद के पूंजीवादी विकास ने अच्छी-खासी संख्या में एक नये शहरी व ग्रामीण मध्यवर्ग को पैदा किया। इस मध्यवर्ग की अपनी आकांक्षायें भी विकसित हुईं। उपभोक्तावादी संस्कृति ने मध्यवर्ग के भीतर अपनी उपभोक्तावादी इच्छाओं को पैदा किया। व्यवस्था के संकटग्रस्त हो जाने के कारण अब मध्यवर्ग के पास विकास के व अपनी इच्छाओं को पूर्ण करने के पहले जैसे अवसर नहीं थे। इसके विपरीत अब उसकी वर्तमान स्थिति पर ही खतरा मंडराने लगा। इसके चलते इस मध्यवर्ग के भीतर निराशा पैदा हुई। निराशा की इसी स्थिति में शहरी व ग्रामीण मध्यवर्ग का एक अच्छा-खासा हिस्सा (विशेष रूप से सवर्णों का) संघ की ओर आकर्षित होने लगा। संघ के आक्रामक हिन्दू राष्ट्रवाद की कल्पना और अल्पसंख्यकों को देश की समस्याओं के लिए जिम्मेदार ठहराने जैसी बातें इसकी आकांक्षाओं को अभिव्यक्ति देने लगी।

देश के पूंजीवादी विकास के फलस्वरूप विविधता भरे इस देश में क्षेत्रों, समुदायों और जातियों की अपनी पहचान भी बनी। इन पहचानों की राजनीतिक अभिव्यक्ति के रूप में विभिन्न क्षेत्रीय व जातीय समीकरणों पर आधारित दलों का विकास हुआ। इस तरह गठित हुए यह दल देश के ज्यादातर हिस्सों की भावनाओं को अभिव्यक्ति नहीं कर सकते थे। कांग्रेस से मोहभंग के बाद इस अखिल भारतीय विकल्प को संघ के संसदीय मोर्चे भाजपा ने उपलब्ध कराया । भाजपा के सत्त में आने के बाद (हालांकि केन्द्र में पूर्ण बहुमत नहीं है) संघ को आगे बढ़ने में मदद मिली है।

विगत दशक में संघ से संबद्ध संगठनों ने जो लामबंदियां की हैं वह उसकी बढ़ती ताकत और बढ़ते आधार का अहसास कराते हैं। यह भविष्य में उसके इरादों का भी अहसास कराते हैं। उदारीकरण-निजीकरण-वैश्वीकरण की नीतियों के फलस्वरूप इस संकट के और ज्यादा गहराने की स्थिति में संघ की ताकत के और अधिक बढ़ने की संभावना पैदा हुई है। इन नीतियों के प्रभावों से देश की व्यापक आबादी प्रभावित हो रही है। सीमांत किसानों को सर्वहारा की पांतों में फेंका जा रहा है तो मध्यम किसान भी तबाह और बर्बाद हो रहे हैं। लंबे समय से चले आ रहे कृषि संकट ने कृषि अर्थव्यवस्था पर निर्भर आबादी की जिन्दगी को नरक बना दिया है। छंटनी, तालाबंदी, उद्योगों का बंद होना व वी. आर. एस. ने न सिर्फ बेरोजगारी को बहुत अधिक बढ़ा दिया है वरन्पहले से ही कार्यरत मजदूरों, कर्मचारियों के जीवन को निराशा के सागर में डुबो दिया है। मध्यवर्ग के विभिन्न हिस्सों की भी हालत डांवाडोल हो रही है। व्यवस्था के इस संकट ने मध्यवर्ग की जमापूंजी में भी सेंधमारी शुरू कर दी है। कुल मिलाकर बेरोजगारों की बढ़ती संख्या, शहरी व ग्रामीण पेटी बुर्जुआ की स्थिति में बढ़ती अस्थिरता, छंटनी-तालाबंदी से बर्बाद हुए मजदूरों की भारी तादाद, लंपट सर्वहारा की कतारें और आम तौर पर भी सर्वहारा की स्थिति में गिरावट, यह सब फासीवाद के विकास के लिए कच्चे सामान के रूप में मौजूद हैं।

LS8

देश में कम्युनिस्ट आंदोलन और संगठित मजदूर आंदोलन की कमजोरी के कारण कम्युनिस्ट और सर्वहारा वर्ग, व्यवस्था से त्रस्त इन वर्गों और तबकों को उनकी वास्तविक समस्याओं को लेकर गोलबंद करने और पूंजीवादी व्यवस्था का तख्ता पलट कर सर्वहारा तानाशाही स्थापित करने के उद्देश्य में नहीं लगा पा रहा है। सर्वहारा वर्ग की संगठित क्षेत्र की अधिकांश संख्या संशोधनवादी और बुर्जुआ पार्टियों तथा उनकी ट्रेड-यूनियनों में संगठित है। सुधारवादी पार्टियों और सुधारवादी ट्रेड-यूनियन नेताओं ने क्रांतिकारी राजनीति का परित्याग करके सांप्रदायिक फासीवादी ताकतों के लिए यह अवसर और सुलभ करा दिया है कि वे व्यापक जनता की वास्तविक आकांक्षाओं का लफ्फाजीपूर्ण दुरूपयोग करके उन्हें अपने गिर्द एकजुट कर लें। इन्हीं कारणों से सांप्रदायिक-फासीवादी ताकतों के मौजूदा उभार को बल मिला है।

सांप्रदायिक-फासीवाद का फौजी व गैर फौजी नौकरशाही के दोनों ही हिस्सों में प्रभाव बढ़ा है। नौकरशाही में बढ़ते प्रभाव के कारण संघी फासिस्टों को न सिर्फ अपनी फासिस्ट गतिविधियां बढ़ाने में मदद मिल रही है वरन इसके साथ ही उनका वास्तविक प्रभाव व ताकत भी काफी बढ़ गयी है। ये नौकरशाही सांप्रदायिक आधार पर काम करते हुए संघ के आधार को बढ़ाने का ही कार्य कर रही है।

एक अन्य कारक भी है जो संघी फासीवाद को मदद कर रहा है वह है साम्राज्यवाद साम्प्रदायिक-फासीवादी संघ की साम्राज्यवाद के साथ घनिष्ठता रही है। इसमें भी विशेषकर अमेरिकी साम्राज्यवाद के साथ। अमेरिकी साम्राज्यवाद अपने प्रतिक्रियावादी चरित्र के कारण दुनिया भर की प्रतिक्रियावादी शक्तियों की मदद करता रहा है। संघ और अमेरिकी साम्राज्यवाद दोनों ही प्रगतिशीलता और क्रांतिकारी शक्तियों के कट्टर दुश्मन हैं। इस कारण इन दोनों का एक घनिष्ठ रिश्ता बन जाता है। हाल-फिलहाल अमेरिकी साम्राज्यवाद के शासकीय हलकों में मौजूद 'सभ्यताओं का संघर्ष' का नारा और संघी फासीवादियों का 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' का नारा एक दूसरे को काफी करीब ले आया है। देश के भीतर ये दोनों ही ताकतें एक दूसरे की मदद करती हैं।

LSS

क्या भारत में फासीवाद दस्तक दे रहा है?

यह सच है कि संघ की ताकत विगत बीस वर्षों में बहुत अधिक बढ़ी है। उसने समाज के सभी हिस्सों में घुसपैठ बनायी है। अपनी विचारधारा और राजनीति के लिए समाज के काफी बड़े हिस्से को गोलबंद किया है। यह भी सच है कि भारतीय पूंजीवादी व्यवस्था का बढ़ता आर्थिक संकट भविष्य में फासीवादी ताकतों के और अधिक मजबूती ग्रहण करने का आधार प्रदान करता है। इस पर किसी को कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इस पर भी कि देश में भारी संख्या में मध्यम वर्ग (शहरी व ग्रामीण), व्यापारी, आफिस कर्मचारी, बेरोजगारों की भारी तादाद (शिक्षित व अशिक्षित), अपनी नौकारी गंवा चुके सर्वहारा वर्ग की बड़ी संख्या यही सब यूरोपीय फासीवाद का आधार बने थे और इस लिहाज से फासीवाद के विकास की परिस्थितियां उपलब्ध हैं इसके साथ ही संघ एक सुगठित और 75 वर्षों से अधिक का अनुभव लिया हुआ संगठन है और उसका एक विस्तृत नेटवर्क है। इस पर भी किसी को आपत्ति नहीं होगी कि सांप्रदायिक-फासीवाद के खतरे को कम करके नहीं आंकना चाहिए। फिर भी कई बुर्जुआ बुद्धिजीवियों की यह मान्यता है कि यहां लोकतंत्र की जड़ें

बहुत गहरी है इसलिए फासीवाद नहीं आ सकता। देश में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो सांप्रदायिक –फासीवाद के इस खतरे को बहुत सीमित करके देखते हैं या फिर इस नये विकास को अपने संज्ञान में लेने के बजाय भारतीय समाज की परंपरागत समस्याओं के रूप में ही देखते हैं ऐसे लोग सिर्फ मौत को ही दावत दे रहे हैं।

इसके विपरीत हमारे देश में बहुत सारे लोग ऐसे हैं जो सांप्रदायिक फासीवाद की वृद्धि को अतिरंजित करके उस स्तर तक ले जाते हैं कि जैसे लग रहा है कि फासीवाद बस हमारा दरवाजा खटखटा रहा है। ऐसे लोग भारतीय समाज की जटिलताओं, तथा उन परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखते जिनमें फासीवाद सत्त ग्रहण करता है या कि शासक वर्ग फासीवाद को अपनाता है। ऐसा करना गलत है। फासीवाद का ऐसा चित्रण हमारी प्राथमिकताओं, हमारी रणनीतियों और उसके अनुरूप व्यावहारिक कार्यक्रमों को मोड़ता है।

भारत में सांप्रदायिक फासीवाद के मजबूती ग्रहण करने के बावजूद कम से कम निकट भविष्य में फासीवाद सत्तशीन होने नहीं जा रहा है। इसकी सबसे महत्वपूर्ण वजह स्वयं हमारे देश की विविधता में है। हमारा देश यूरोप के देशों के समान गठित नहीं हुआ। यूरोप के राष्ट्रों का गठन कौमों के आधार पर हुआ था जो एक सुगठित इकाइयां थीं। परंतु हमारा देश अनेक कौमों, जातियों, जनजातियों व क्षेत्रों में विभाजित है। यहां तक कि संघ जिस हिन्दुत्व का प्रतिनिधि होने का दावा करता है वह स्वयं भी अनेक धाराओं में विभाजित हैं। कम से कम ये विभाजन तुरंत खत्म होने नहीं जा रहे हैं। ऐसे में सांप्रदायिक फासीवाद के देश के सभी हिस्सों और सभी समूहों के बीच अपने लिए समर्थन जुटा पाना संभव नहीं होगा। भारतीय समाज की विषमांगता सांप्रदायिक–फासीवादियों के मार्ग की मुख्य बाधा है। भाजपा के 'सांस्कृतिक राष्ट्रवाद' की धार्मिक और राजनीतिक दोनों अंतर्वस्तुओं को देश का बहुलांश मानने के लिए तैयार नहीं होगा। इस वजह से यदि वह सत्त में आ भी जाये तो उसका सत्त में बना रहना अपेक्षाकृत मुश्किल होगा। यह ऐसी वस्तुगत सीमा है जिसके लिए सांप्रदायिक फासीवाद कुछ नहीं कर सकता।

सांप्रदायिक–फासीवाद आर्थिक मामलों में इस स्थिति में नहीं है कि वह कांग्रेस या मध्यमार्गी पार्टियों की तुलना में और अधिक आकर्षक ढंग से देशी–विदेशी गठजोड़ की जरूरतों को पूरा कर सके। ये पार्टियां स्वयं उनकी जरूरतों के अनुकूल आर्थिक और गैर जनवादी कदमों को उठा रही हैं।

हमारे देश में अभी मजबूत मजदूर आंदोलन नहीं है। देश के मजदूरों की विशाल संख्या अभी भी या तो बुर्जुआ पार्टियों की ट्रेड–यूनियनों में है या फिर संशोधनवादी पार्टी की ट्रेड–यूनियनों में। संख्या के लिहाज से तो सबसे ज्यादा मजदूर भाजपा व कांग्रेस के ही साथ हैं। जब तक मजदूर आंदोलन सुधारवाद व बुर्जुआ पार्टियों की गिरफ्त में है तब तक वह व्यवस्था के लिए कोई बड़ा खतरा पैदा नहीं कर सकता। और जब तक पूंजीवादी व्यवस्था के वजूद के लिए मजबूत चुनौती खड़ी नहीं होती तब तक वह फासीवाद की ओर नहीं जायेगी।

संघ परिवार के लिए एक अन्य अंतर्विरोध भी समस्या का कारण है। यह अंतर्विरोध है उसके वर्ग चरित्र और वर्गीय आधार को लेकर। पूंजीपति वर्ग उसे पूरी तरह स्वीकार नहीं रहा है लेकिन वह उसी की सेवा करना चाहता है। और उसके इन प्रयासों के कारण जैसे ही उसके सामाजिक आधार का खतरा पैदा होता है वह पुनः उल्टे पैर खड़ा हो जाता है। सांप्रदायिक–फासीवाद एक ओर अमेरिकी साम्राज्यवाद के साथ मित्रता करना चाहता है, विदेशी पूंजी को आमंत्रित करना

LSS

चाहता है तो दूसरी ओर उसके कुछ संगठनों को इसका विरोध भी करना पड़ता है। वह मंडल के बरक्स मंदिर को खड़ा करता है परंतु पिछड़ी जातियों और दलितों को भी अपने साथ खड़ा करना चाहता है।

क्रांतिकारी शिविर का एक संगठन आक्रामक सांप्रदायिकता के मार्ग में भाजपा के मत प्रतिशत के ठहरे रहने और बाबरी ध्वंस के बाद भाजपा को विधान सभा चुनाव में मिली असफलता को लोगों द्वारा नकारने के रूप में देखता है। परंतु मात्र इससे कोई फर्क नहीं पड़ता और न ही इससे सांप्रदायिक फासीवाद का आकलन करना चाहिए।

सांप्रदायिक फासीवाद के मार्ग में उपर्युक्त बाधाओं के बावजूद इसका खतरा कम नही है। अपने संकट के तीखे होने के साथ-साथ शासक वर्ग तानाशाही और अंततः पूंजीवादी संबंधों में अस्थिरता पैदा होने की स्थिति में वह फासीवाद को भी अंगीकार करने की ओर जा सकता है।

IV

सांप्रदायिक-फासीवाद/फासीवाद के खिलाफ संघर्ष

LS8

सांप्रदायिक-फासीवाद /फासीवाद से संघर्ष के लिए यह जरूरी है उसे समझा जाये और इसके बारे में जो भ्रम हैं उनसे मुक्त हुआ जाये। फासीवाद के किसी भी रूप को कम करके आंकना और उसका अतिरंजितीकरण दोनों ही खतरनाक हैं। यह दोनों ही गलत निष्कर्षो और कार्यनीतियों पर पहुंचाते हैं। एक अवसरवाद की ओर ले जाती है तो दूसरी सुधारवाद की ओर।

फासीवाद के खिलाफ कोई भी संघर्ष बुर्जुआ वर्ग की इस या उस पार्टी के साथ सहयोग करके नहीं लड़ा जा सकता है। शासक वर्ग की किसी भी पार्टी पर निर्भरता अंततः फासीवाद को नजदीक लाने में ही मदद करेगी। हमारे देश में संशोधनवादी पार्टियां यही कर रही हैं। वे चुनावी जोड़-तोड़ और कांग्रेस के साथ एकता करके भाजपा को रोकना चाहती हैं। यूरोपीय सामाजिक-जनवादियों ने भी यह व्यवहार किया था। 'ज्यादा बुरे' से 'कम बुरे' का चयन स्वयं 'ज्यादा बुरे' तक उन्हें ले गया । जो लोग भाजपा को मुख्य शत्रु चिह्नित करते हुए भी कांग्रेस को दुश्मन मानकर उसके साथ तो सहयोग का विरोध करते हैं परंतु मध्यमार्गी पार्टियों के साथ मिलकर संघर्ष करना चाहते हैं वे भी अंततः उपर्युक्त परिणाम पर ही पहुंचेंगे।

सांप्रदायिक-फासीवाद को इस रूप में चित्रित करना कि वह जनवाद की कमी, धर्मनिरपेक्ष विचारों की कमी व जनता के पिछड़ेपन तथा समाज में सहिष्णुता की कमी के कारण आता है, मानना गलत है। हालांकि ये उसके प्रसार में सहायक हैं। फासीवाद कोई पिछड़े समाजों की ही चीज नहीं है। फासीवाद का पहले-पहले उद्‌भव और विकास तो पश्चिमी यूरोप के विकसित देशों में ही हुआ और उसका सबसे ज्यादा नग्न रूप तो जर्मनी जैसे विकसित देशों में ही देखने में आया था। फासीवाद व्यवस्था के समग्र संकट की पैदाइश है। उसे अधिरचना तक सीमित कर देना और फिर उससे निकाले गये संघर्ष के तरीकों को –जनशिक्षा और जनगोलबंदी– तक ही सीमित कर देना सुधारवाद है। फासीवाद को सिर्फ और सिर्फ समाजवाद लाकर ही रोका जा सकता है।

देश में सांप्रदायिक फासीवाद/फासीवाद से लड़ने के प्रश्न पर एक धारा ऐसी भी है जो कहती है कि हिन्दू या मुस्लिम पहचानों के बरक्स नारी, दलित व जनजातीय आदि पहचानों को खड़ा करें और इनके आगे यह पहचान गौण बन जायेगी। यह धारा मानती है कि यूरोप में नवनात्सीवादी आंदोलन के और ज्यादा मजबूत न होने का कारण नारीवादी आंदोलन है। वे इन आंदोलनों को फासीवाद को रोकने का महत्वपूर्ण उपकरण मानते हैं। यह उत्तर आधुनिकतावादी दर्शन फासीवाद के विरूद्ध संघर्ष में मजदूर वर्ग की भूमिका पर भी सवाल खड़ा करता है। यह सोच न सिर्फ वर्गीय संघर्ष पर पर्दा डालती है बल्कि शासक वर्ग पर कोई टिप्पणी न करके अपनी सारी ऊर्जा इसे चिरंतन बनाये रखने में ही लगाती है। फिर भी यह धारा फासीवाद से लड़ने की बात करती है।

सांप्रदायिक-फासीवाद/फासीवाद के खिलाफ संघर्ष सुधारवाद/सामाजिक-जनवाद के विरूद्ध बिना लड़े नहीं जीता जा सकता । मजदूरों की विशेषकर संगठित मजदूरों की एक बड़ी संख्या सुधारवादी पार्टियों व सुधारवादी ट्रेड-यूनियनों के साथ है। यूरोप के सामाजिक -जनवादियों की भांति हमारे यहां की संशोधनवादी पार्टियों ने संघी फासीवाद के लिए मैदान खुला छोड़ रखा है। एक मायने में वे संघ की अप्रत्यक्ष तौर पर मदद ही करते रहे हैं। वे केवल फासीवाद के खिलाफ संघर्ष की बातें ही करते हैं। व्यवस्था के संकट के तीव्र होने पर इन सुधारवादी पार्टियों के सामाजिक आधार (मजदूरों का सुविधाप्राप्त हिस्सा) की भी स्थिति खराब होने लगती है। मजदूरों का यह सुविधा प्राप्त हिस्सा भी अंतत: व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष में खिंचने लगता है। फासीवाद चूंकि संकटग्रस्त और क्षरित होती व्यवस्था का लक्षण है अत: इस अवस्था में यह फासीवाद विरोधी संघर्षो की ओर भी खिंचता है। अपने आधार को बनाये रखने के लिए और मजदूरों के दबाव के कारण ही सही इन्हें फासीवाद-विरोधी संघर्षो में कम से कम औपचारिक तौर पर आना होता है और कुछ क्रांतिकारी बातें कहनी पड़ती हैं। इसके साथ ही फासीवाद की चाहे जो भी किस्म हो, जनतंत्रवादियों को भी उसके हमलों और हिंसा का शिकार होना पड़ता है। उनके द्वारा की जाने वाली राजनैतिक गतिविधियों पर प्रतिबंध लगा दिया जाता है। ज्यादातर मामलों में उनकी राजनैतिक पार्टियों/संगठनों को भी भंग कर दिया जाता है। फासीवाद द्वारा उनके खिलाफ की जाने वाली दमनात्मक, हिंसात्मक, उत्पीड़नात्मक कार्यवाहियां उन्हें फासीवाद के विरूद्ध खड़ा करती हैं । हमें सामाजिक-जनवादियों के समझौतापरस्त चरित्र का भंडाफोड़ करते हुए उन सभी हिस्सों को अपने साथ लाने का प्रयास करना चाहिए जो फासीवाद के विरूद्ध लड़ना चाहते हैं। इसलिए हमें इन पार्टियों और इनकी सुधारवादी ट्रेड-यूनियनों को फासीवाद-विरोधी मोर्चे में शामिल करना चाहिए। परंतु इन पर क्रांतिकारी सर्वहारा की रणनीति निर्भर नहीं होनी चाहिए।

हमारे यहां कुछ क्रांतिकारी संगठन सांप्रदायिकता तथा सांप्रदायिक-फासीवाद के खिलाफ तो संघर्ष की बात करते हैं परंतु अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता के प्रश्न पर मौन साध लेते हैं। आक्रामक हिन्दू सांप्रदायिक फासीवाद मुख्य निशाना होना चाहिए इससे किसी को गुरेज नहीं है लेकिन यह भी नहीं भूलना चाहिए कि दोनों ही प्रकार की सांप्रदायिक ताकतें एक दूसरे को आगे बढ़ाने में मदद करती हैं। ऐसे में अल्पसंख्यक सांप्रदायिकता के विरूद्ध संघर्ष न करने से हम केवल अल्पसंख्यक सांप्रदायिक ताकतें को ही बढ़ावा नहीं देंगे बल्कि ऐसी रणनीति अंतत: दोनों प्रकार के सांप्रदायिक फासीवादी ताकतों की ही सेवा करेगी, जिनके खिलाफ वे संघर्ष करना चाहते हैं।

LS8

गुजरात के घटनाक्रम ने, कुछ बुद्धिजीवियों तथा उदारवादी और मानवतावादी प्रचार से प्रभावित कुछ क्रांतिकारियों को इतना उद्वेलित कर दिया कि उनके लिए गुजरात का घटनाक्रम निजीकरण-उदारीकरण-वैश्वीकरण की नीतियों तथा समग्र रूप में पूंजीवाद- साम्राज्यवाद विरोध से भी ज्यादा महत्वपूर्ण लगने लगा। सर्वहारा वर्ग के अगुवा दस्ते की नीति इसकी इजाजत नहीं देती कि वे उसके दूरगामी उद्देश्यों, राजनीतिक संघर्षो को तिलांजलि देकर अपनी रणनीति को मात्र एक घटना से प्रभावित होकर बदल ले। फासीवाद को चुनौती इन संघर्षों को तिलांजलि देकर नहीं इनके हिस्से के तौर पर ही दी जा सकती है। फासीवाद के खिलाफ संघर्ष फासीवादियों के एजेण्डों पर खड़े होकर नहीं, अपने (सर्वहारा वर्ग) के एजेण्डों को आगे बढ़कर ही लड़ा जा सकता है।

जो भी सांप्रदायिक-फासीवाद/फासीवाद को इस व्यवस्था के दायरे में किसी भी रूप में पराजित करने के सपने पालता है वह उसका मुकाबला अंततः नहीं कर सकता।यूरोपीय फासीवाद यदि व्यवस्था के दायरे में पराजित कर भी दिया गया, तो भी उसने विश्वयुद्ध के रूप में इसकी भारी कीमत वसूल की। फासीवाद को केवल समाजवाद का संघर्ष ही रोक सकता है।

अंतिम तौर पर, फासीवाद के विरूद्ध संघर्ष में हमें यह भी ध्यान में रखने की जरूरत है कि फासीवाद एक राजनैतिक आंदोलन है, इसके बावजूद कि वह घोर प्रतिक्रियावादी चरित्र रखता है। इसलिए फासीवाद को सिर्फ सैनिक, आतंकवादी आंदोलन के रूप में देखना संघर्षो में गलत रणनीति अपनाने की ओर ले जायेगा। जैसा कि 23 जून, 1923 को क्लारा जेटिकन ने इटली में फासीवाद के आने के बाद इटली की कम्युनिस्ट पार्टी की गलती को चिह्नित करते हुए कहा था कि इटली की कम्युनिस्ट पार्टी ने फासीवाद को केवल सैनिक आतंकवादी आंदोलन के रूप में देखा था। उसने फासीवाद को एक व्यापक सामाजिक आधार वाले जनांदोलन के रूप में नहीं देखा था, जिसने इटली की सत्त में आने के पहले ही मजदूर वर्ग पर विचारधारात्मक और राजनैतिक जीत हासिल कर ली थी।

फासीवाद से संघर्ष उपर्युक्त सबक को ध्यान में रखते हुए ही किया जा सकता है। इसी के मद्देनजर कम्युनिस्ट इंटरनेशनल ने अपने प्रस्ताव में संघर्ष का जो रास्ता बताया वह इस प्रकार थाः

> *''फासीवाद को राजनीतिक तौर पर निशस्त्र करना व हराना होगा और मजदूरों को फासीवादी हिंसा के खिलाफ आत्मरक्षा के लिए मजबूती से संगठित करना होगा।'', (Resolution of the Third ECCI Plenum on Fascism, वही, Volume II, Page 42, अनुवाद हमारा)*

सांप्रदायिक-फासीवाद/फासीवाद से लड़ने के लिए आवश्यक है कि

1. फासीवादी कार्यवाहियों के खिलाफ हर संभव प्रतिरोध किया जाये।

2. सांप्रदायिक-फासीवादी/फासीवादी लफ्फाजी तथा संघी राष्ट्रवाद का भंडाफोड़ किया जाये।

3. बुर्जुआ सरकारों द्वारा जनतांत्रिक अधिकारों को सीमित करने के सभी प्रयासों का विरोध किया जाये।

4. सर्वहारा व अर्द्ध सर्वहारा वर्ग को वैज्ञानिक समाजवाद के झंडे तले गोलबंद किया जाये। सर्वहारा वर्ग में मौजूद सुधारवादी विचारों के खिलाफ संघर्ष किया जाय तथा फासीवाद के चरित्र को उनके सामने स्पष्ट किया जाये।

LSG

5. ग्रामीण क्षेत्रों में खेतिहर सर्वहारा व अर्द्ध-सर्वहारा को संगठित किया जाये।

6. छोटे किसानों और मध्यम किसानों के सामने फासीवाद के कुलक/भूस्वामी पक्षधर चरित्र को स्पष्ट किया जाये तथा उसे सर्वहारा संगठनों के नेतृत्व के तहत लाया जाये।

7. शहरी मध्यवर्ग के बीच भी फासीवाद के देशी-विदेशी पूंजी के पक्षधर चरित्र को स्पष्टत: के साथ रखा जाये और उसे समझाया जाये कि उसकी दु:ख व तकलीफों का कारण पतित पूंजीवादी व्यवस्था और उसका संकट है।

शहरी व ग्रामीण सर्वहारा के नेतृत्व में शहरी व ग्रामीण निम्न पूंजीपति वर्ग की एकता पर आधारित सशक्त मोर्चा ही फासीवाद को मुकम्मिल चुनौती दे सकता है। जिसका लक्ष्य सर्वहारा तानाशाही स्थापित करना हो। केवल और केवल समाजवाद लाकर ही फासीवादी खतरे को समाप्त किया जा सकता है।

□□□□□

LS8